ओ३म्

वेदविज्ञानभाष्यमण्डनम्–
आर्यसत्यजिद्भ्रमभंजनम्

(आचार्य सत्यजित् जी के आक्षेपों का उत्तर)

लेखक

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक

गुरुवार (11 अप्रैल 2013) चैत्र, शुक्ला, प्रतिपदा, २०७०

प्रकाशक

श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास
(वैदिक एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान शोध संस्थान)
वेद विज्ञान मन्दिर, भागलभीम
भीनमाल, जिला–जालोर
(राजस्थान) पिन– ३४३०२६
Website : www.vaidicscience.com
E-mail : swamiagnivrat@gmail.com

अनुक्रमणिका

(१) प्रारम्भिक निवेदन

सत्य से बढ़कर मानव जाति की उन्नति का अन्य कोई कारण नहीं है, इस कारण 'सत्य को ग्रहण करने तथा असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए', यह कथन, इस युग में सत्य के सबसे बड़े प्रस्तोता जिन्होंने इसी हेतु अपना जीवन बलिदान कर दिया, ऐसे महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का है। महर्षि ने वेद तथा आर्ष ग्रन्थों में अश्लीलता, मांसाहार, **पशुबलि , नरबलि, मदिरापानादि दोषों के मिथ्या आरोपों को जड़ मूल से उखाड़ कर उन सत्य शास्त्रों के न केवल पावन सत्य स्वरूप को संसार के समक्ष रखने का प्रयास किया अपितु इन शास्त्रों में महान् ज्ञान विज्ञान के रहस्यों को उद्घाटित करने की एक ऐसी परम्परा की भी नींव रखी, जो अति नूतन भी कही जा सकती थी और अति पुरातन ही नहीं अपितु सनातन भी।** दुर्भाग्य से वे अल्पायु में संसार से चले गये। उनके पश्चात् आर्य विद्वानों ने उनके अनुकरण का प्रयास तो किया परन्तु वे इसमें पूर्णतः सफल नहीं हो सके, इस कारण कहीं कहीं वे सायण आदि आचार्यों के अनुगामी बनकर वेद भाष्य व ब्राह्मण ग्रन्थादि के भाष्य करने में अश्लीलता, मांसाहार व पशुबलि आदि के पोषक बन गये।

जब मेरे पढ़ने में ऐसे प्रकरण आए, तो मैं विचलित हो गया। वर्षों पूर्व मैंने ऐसे स्थलों को देखा था परन्तु मौन रहा, इसका कारण यह था कि जब तक मैं इन स्थलों के सत्य स्वरूप को समझकर उनमें वास्तविक ज्ञान–विज्ञान को जानने में समर्थ नहीं हो सकता, तब तक मौन ही उचित समझा। जब मैंने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रारम्भिक व्याख्यान पूर्ण करके वेदार्थ की एक वैज्ञानिक शैली को समझा, तब ही इन दोषयुक्त बिन्दुओं पर बोलना उचित समझा। इस हेतु मैंने पत्रांक 927–1176 दिनांक 06–12–2012 द्वारा लगभग 250 विद्वान्, आर्य कार्यकर्त्ताओं, सभाओं आदि को इस हेतु सचेत किया परन्तु अधिकांश स्थानों से कोई उत्तर नहीं मिला। तब मैंने दो मंत्रों का भाष्य स्वयं करके अनेकत्र भेजा। अधिकांश विद्वानों की उपेक्षा को देखकर वह भाष्य शंका समाधान सहित हमारे एक कार्यकर्त्ता प्रिय अभिषेक आर्य ने व्यक्तिगत स्तर से विभिन्न विद्वानों व आर्य नेताओं को भेजकर जानना चाहा कि कौन सा भाष्य उचित है? इस पर कुछ विद्वानों की ही प्रतिक्रिया प्राप्त हुयी, अधिकतर विद्वानों ने प्रिय अभिषेक आर्य को ही अपनी प्रतिक्रिया भेजी तो किन्हीं ने सीधे मुझे भेजी। इन सभी प्रतिक्रियाओं को हम इस पुस्तक के परिशिष्ट में प्रकाशित कर रहे हैं। अनेक विद्वान व आर्यनेता मौन रहे। मेरे भाष्य का विरोध किसी–2 ने ही किया उनमें से श्री सत्यजित् जी, परोपकारणी सभा, ने अपनी व्यंग्य भरी अशिष्ट सी प्रतिक्रिया तथा अश्लील भाष्य के खुलकर समर्थन के रूप में परोपकारी मार्च प्रथम व द्वितीय 2013 में लेख लिखे। वे यहीं तक सीमित नहीं रहे अपितु उन्होंने उन अश्लील भाष्यों, जिन्हें हम प्रकाशित करना उपयुक्त नहीं समझ रहे थे, को भी प्रकाशित कर जन साधारण के बीच आर्य विद्वानों की वेद विषयक दृष्टि को निर्वस्त्र भी कर दिया।

मेरी इच्छा थी कि आर्य विद्वान् मेरे भाष्य पर कुछ विशेष आपत्ति उठायें, जिनका समाधान मैं अपने ऐतरेय ब्राह्मण व्याख्यान भूमिका में कर सकूँ। दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। श्री सत्यजित् जी की दो शंकाएं साधारण आर्यजनों के स्तर से अवश्य उचित मानी जा सकती हैं, अन्यथा उन्होंने मुद्रण दोष अथवा अपने अहंकार वा अज्ञानताजन्य व्यंग्यों से ही व्यर्थ आक्षेप किए हैं। वैसे मैंने पिछले वर्ष से उनके व्यवहार में अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष व कटुता को देखा है, इस कारण मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

आश्चर्य है कि उन्हें मेरे त्रिविध प्रक्रिया से किए भाष्यों में अच्छाई कुछ भी नहीं दिखाई दी तथा अश्लील भाष्यों में उन्हें कोई दोष दिखाई नहीं दिया। इसे ही तो असूयावृति वा नितान्त अन्धा पक्षपात कहा जाता है, जिसे महर्षि की दृष्टि में अधर्म कहते हैं।

पाठक विचारें कि हम पौराणिक, इस्लामी, ईसाई, व नास्तिक आदि के दोषों पर तो प्रहार करते हैं। यह बात पृथक् है कि सत्यजित् जी जैसे विद्वान् तो इनके विरुद्ध बोलने वा लिखने का अभी तक कभी साहस भी नहीं कर सके। सिवा आदित्यमुनि जी व उपेन्द्र मुनि जी के, अथवा मेरे, वे किसके विरुद्ध कुछ भी लिखने वा बोलने का साहस कर सके हैं? अब अपनों से लड़ना ही कुछ आर्य विद्वानों का परम धर्म हो गया है। जरा विचारें कि अपने भाष्यों के दोषों को मैं यदि अपने विद्वानों को नहीं बताऊं, तो क्या विधर्मियों को बताऊं?

पूज्य स्वामी वेदानन्द सरस्वती, उत्तरकाशी ने अपना एक लेख 'ब्राह्मण ग्रन्थों में अद्भुद् विज्ञान' भी हमें भेजा था। हम यह लेख इस पुस्तक के परिशिष्ट में प्रकाशित कर रहे हैं। श्री स्वामी जी का बहुत आभार। इससे भी श्री सत्यजित् जी जैसे विद्वानों को छन्द विषयक कुछ जानकारी मिल सके, तो अच्छा रहे।

आर्यो! **जब महर्षि दयानन्द जी महाराज ने वेदभाष्य करना प्रारम्भ किया था, तब रूढ़ार्थों के कूप में पड़े तत्कालीन वैदिक विद्वानों में एक भारी हलचल मच गयी थी। कोई भी महर्षि के वेदभाष्य की शैली की प्रामाणिकता को स्वीकारने को तैयार नहीं हुआ। सभी उनकी शैली को मनगढ़न्त तथा परम्पस्परा के प्रतिकूल बता रहे थे। महर्षि को नास्तिक, ईसाई आदि का एजेण्ट न जाने क्या–2 उपाधि प्रदान की जा रही थी। वे विरोधी भी उस समय अपने ही लोग थे। आज पुनः यही इतिहास दोहराया जा रहा है। मुझे भी अपने ही लोग गाली प्रदान कर रहे हैं। मेरे अर्थ को मनमाना बताकर व्यंग्य करने वाले स्वयं को ऋषि–वेदभक्त भी कह रहे हैं। अपनी अज्ञानता उन्हें दिखाई ही नहीं देती। आशा है कभी उनको विवेक अवश्य होगा।**

इस पुस्तक को प्रकाशित करने का आर्थिक दायित्व प्रिय अभिषेक आर्य ने वहन किया है, एतदर्थ उन्हें साशीष धन्यवाद। परमात्मा उन्हें धर्म मार्ग पर सदा चलाये।

अन्तिम निवेदन यह कि मैं इस विवाद को यहीं समाप्त करके अपने भाष्य को अन्तिम रुप देने में व्यस्त रहूँगा, उस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण भूमिका लिख रहा हूँ। **ग्रन्थ पूर्ण होने तक अर्थात् लगभग 5–6 वर्ष पूर्ण शान्त रहूँगा। वैसे भी सत्यजित् जी जैसे विद्वानों से कभी भी चर्चा करना मेरा उद्वेश्य रहा ही नहीं है। उन्हें विवेक हुआ तो मेरे साथ कभी चलेंगे अन्यथा वे स्वतंत्र हैं, ही।** यह बात भी विशेषरूपेण कहानी है कि यद्यपि सत्यजित् जी की भाषा अशिष्ट, अहंकार व व्यंग्यपूर्ण है परन्तु उसका उत्तर मुझे मैत्रीपूर्ण लिखना चाहिए, ऐसा विचारा था। तभी अकस्मात् सत्यजित् जी का एक विचित्र एवं अनुभूत स्वभाव याद आया कि यदि उन्हें मैत्री व सम्मान की भाषा में उत्तर दिया जाए, तो वे उस उत्तर के भाव को अन्यथा ही लेते हैं। हरिजन सोमनाथ त्यागी प्रकरण में ऐसा मैं प्रत्यक्ष देख चुका हूँ, इस कारण मुझे अपना उत्तर उनकी ही शैली में एक प्रतिपक्षी की भाँति देने को विवश होना पड़ा है। **सत्यजित् जी के आक्षेपों का उत्तर इस समय इस कारण देना अनिवार्य प्रतीत हुआ कि उनके आक्षेपों के रहते मेरा आर्य समाज में रहकर वेद विज्ञान अनुसंधान के महान् कार्य को करने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। तब या तो आर्य समाज को त्यागकर अन्य उपयुक्त महानुभावों के सहयोग से अपना** कार्य करता अथवा सत्यजित् जी को उपयुक्त उत्तर देकर आर्यों का भ्रम दूर करता। मैंने इस समय दूसरा विकल्प अति उचित समझा। इस पुस्तक के मुख्य अध्याय 'वेद विज्ञान भाष्यमण्डनम्–आर्यसत्यजिद्–भ्रमभंजनम्' को परोपकारिणी सभा के कार्यकारी प्रधान तथा परोपकारी के सम्पादक डॉ. धर्मवीर जी को इस आशय से भेज रहा हूँ कि वे इसे अपनी परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित करके पत्रकारिता–धर्म के पालन के साथ संवाद को यथार्थता भी प्रदान करें। उन्होंने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में सत्यजित् जी के लेख पर प्रतिक्रियायें मांगी थी। मेरी प्रतिक्रिया यह है, अब इसे अपने पाठकों को बताने का कष्ट करें। आशा है, पाठक सत्यासत्य के विवेक में स्वावलम्बी बनेंगे। प्रत्येक बात के लिए विद्वानों का मुख नहीं देखेंगे। **पूर्व में भी अनेक विद्वान् धर्मपरायण जनता को भ्रमित किया करते थे, जिसकी महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में चर्चा की है, उसी प्रकार आज भी कुछ आर्य विद्वान् आर्यजनों को भ्रमित कर रहे हैं। इस कारण आर्यों को स्वाध्यायशील व विचारवान् होने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए, ताकि वे स्वयं विवेक से भी सत्य को जानने में सक्षम हो सकें।** ईश्वर सबको ऐसी शक्ति प्रदान करें, इसी कामना के साथ

आपका अपना ही
अग्निव्रत नैष्ठिक

(२) वेदविज्ञानभाष्यमण्डनम्–आर्यसत्यजिद्भ्रमभंजनम्

मैंने एक पत्र दिनांक 6.12.2012 पत्रांक 927–1176 सार्वदेशिक सभाओं व परोपकारिणी सभा के नाम लिख कर कुछ चुने हुए विद्वानों , नेताओं व आर्यजनों को भेजकर निवेदन किया था कि आर्य विद्वानों ने विशेषकर आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एवं स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक ने वेदभाष्य करने में आचार्य सायण की नकल करके अश्लीलता परोसी है तथा पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने शतपथ ब्राह्मण के भाष्य में मांसाहार व पशुबलि का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। इस पर सभाओं व विद्वानों को विचार करना चाहिये। सितम्बर 2012 में यहाँ पधारे श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती (उत्तरकाशी), डा. जयदत्त जी उप्रैती (अल्मोड़ा) को जब मैंने यह जानकारी दी थी, तो वे स्तब्ध रह गये व दुःखी भी हुये उसके उपरान्त ही मैंने उपर्युक्त पत्र लिखा था। उसके पश्चात् मैंने एक पत्र **'विकल्प आपके पास'** के साथ ऋग्वेद 10.86.16,17 मंत्रों का तीन आर्य विद्वानों के भाष्य के साथ अपनी शैली से उनका भाष्य करके अपने कार्यकर्त्ता प्रिय अभिषेक आर्य के द्वारा विद्वानों को भिजवाया था। कुछ आर्यजनों को हमने कार्यालय से ही भेजा था। जिस पर निम्नानुसार प्रतिक्रियायें पत्र वा दूरभाष से प्राप्त हुयीं–

1. **मेरे भाष्य के समर्थक एवं स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक तथा आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री के भाष्य के विरोध में प्रतिक्रिया देने वाले विद्वान् हैं** –१. श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती २. डा. जयदत्त जी उप्रैती ३. प्रो. रूपकिशोर जी शास्त्री (सचिव, सान्दीपनि वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन) ४. श्री इन्द्रजित् जी देव, यमुना नगर ५. डा. मोक्षराज जी अजमेर ६. आचार्य आनन्द प्रकाश जी , रंगारेड्डी (हॉं, आचार्य आनन्ददप्रकाश जी ने भाष्य कैसे किया, इसकी स्पष्टता करते, तो कार्य कंक्रीट जैसा होता, यह अवश्य कहा था। आश्चर्य कि हमारे द्वारा श्री सत्यजित् जी को अपना उत्तर ईमेल से भेजने के उपरान्त इन्होंने अपना मत 10–4–2013 को बदल लिया।) ७. आचार्य धर्मबन्धु जी (यद्यपि इन्हें हमारा भाष्य अभी तक पहुँच नहीं पाया परन्तु हमारे शिविर में वैज्ञानिक भाष्य पर मेरा पक्ष अवश्य सुना था) ८. श्री वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय ६. महात्मा चैतन्य मुनि जी।

2. मेरे भाष्य की प्रशंसा व उस अश्लील भाष्य को भी दबे मन से सत्य मानने वाले विद्वान्– १. डा. प्रशस्य मित्र जी शास्त्री २. डा. स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती, हरिद्वार ३. आचार्य उमाकान्त जी उपाध्याय ४. आचार्या नन्दिता जी शास्त्री, वाराणसी।

3. मेरे भाष्य का विरोध व उस अश्लील भाष्य का समर्थन करने वाले विद्वान्– १. डा. ब्रह्ममुनि जी परली,२. आचार्य सत्यजित् जी अजमेर ३. शायद आचार्य ज्ञानेश्वर जी रोजड़ (इन्होंने एस.एम.एस. द्वारा कहा था कि भाष्य अश्लील कहने से पूर्व अश्लीलता की परिभाषा जाननी होगी, अब मेरे भाष्य पर वे क्या मानते हैं, यह स्पष्ट नहीं) ४. श्री वेदपाल जी शास्त्री (मुजफ्फरनगर)।

4. दोनों भाष्यों को गलत बताने वाले– श्री स्वामी विवेकानन्द जी परिव्राजक, रोजड़।

5. केवल मेरे शुभचिन्तक परन्तु अश्लील भाष्य पर मौन–१. श्री स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती, मेरठ २. आचार्य आनन्द जी पुरुषार्थी, होशंगाबाद।

6. स्वामी देवव्रत जी सरस्वती, दिल्ली– इन्होंने 'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय' नामक ग्रन्थ में श्री पं. शिवशंकर जी काव्यतीर्थ के भाष्य का पक्ष लिया। मेरे भाष्य पर अप्रसन्नता एवं अश्लील भाष्य का कुछ कुछ समर्थन किया।

मेरे विरोधी व अश्लील भाष्य के समर्थकों में से डा. ब्रह्ममुनि जी (ये वनस्पतिशास्त्र के विद्वान् हैं तथा शास्त्रीय ज्ञान नगण्य है वस्तुतः ये आर्य नेता हैं) का विरोध केवल अनावश्यक उत्तेजना एवं प्रश्नों से पूर्णतः रहित था, तो सत्यजित् जी का परोपकारी मार्च (प्रथम व द्वितीय) 2013 में **'नैष्ठिक अग्निव्रत के पत्र का उत्तर एवं लेख की समीक्षा'** नाम से दो किश्तों में लेख प्रकाशित हुआ है। यद्यपि मैंने सितम्बर 2012 में अपने 'वेद विज्ञान परिचय शिविर' के अवसर पर उपस्थित **सभी विद्वानों , आर्यजनों व अपने न्यासियों के आग्रह पर यह प्रतिज्ञा की थी कि मेरे विरुद्ध कोई लेख किसी पत्रिका में वा व्यक्तिगत पत्र द्वारा आयेगा,**

उसे मैं पढ़ूंगा ही नहीं तब उत्तर देने में समय व्यय होगा ही कैसे? मुझे अपने लक्ष्य के लिये बहुत लम्बी यात्रा तय करनी है, इस कारण मुझे अनावश्यक लोगों से माथापच्ची करने में समय व्यर्थ नहीं करना चाहिए, ऐसा परामर्श सबका था।

सत्यजित् जी ने मेरे वेदभाष्य के खण्डन व अश्लील वेदभाष्य के मण्डन के साथ मुझ पर एक गम्भीर आरोप यह और लगाया है, वे परोपकारी मार्च (द्वितीय) में लिखते है "जब उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर मैंने वहाँ चर्चा शास्त्रार्थ हेतु आना चाहा, उनके समय–स्थान–निर्णायक–न्यायाधीश व जनता के बीच में भी, तो अनुमति देने से मना कर दिया। अन्य मतभेद वाले स्थलों पर भी चर्चा का प्रस्ताव ठुकरा दिया। यदि अपने पर इतना विश्वास नहीं है, तो चुनौतिपूर्ण आमन्त्रण क्यों प्रचारित करवाया था? क्या मात्र मक्खन लगवाना चाहते थे?"

उत्तर :– यह भाषा एक कथित अध्यात्म–चिन्तक व सौभ्य स्वभावी विद्वान् ही है। अनावश्यक इस प्रसंग को लाकर आप स्वयम्भू शास्त्रार्थ महारथी बनने चले हैं? जब मेरा विज्ञापन छापा था तब आपने एस. एम. एस. द्वारा आने की इच्छा व्यक्त की थी। जब मैंने प्रयोजन पूछा तो आपने बताया कि आप मेरे उस पूर्व आरोप कि सन 1999 में हरिजन सोमनाथ त्यागी के परोक्ष समर्थन में योगदर्शन में मूर्तिपूजा की बात दबे मन से स्वीकारी थी, पर विवाद करने आना चाहते थे। इसके लिये आपने निर्णायकों की सूची भी मांगी थी। मैंने एक बार एक पत्र में यह लिखा था कि आप (सत्यजित् जी) आज खण्डन करने लगे जबकि 1999 में हरिजन सोमनाथ त्यागी के योगदर्शन में मूर्तिपूजा विषयक लेख को देखकर चकरा गये थे तथा परोक्ष रुप से उसी का कुछ कुछ पक्ष लिया था। मेरा उस समय आपसे मैत्री सम्बंध था और उसी सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में मृदु पत्र व्यवहार मेरा आपसे हुआ था। उस समय आप महर्षि दयानन्द जी सरस्वती को पूर्ण प्रमाण भी नहीं मानते थे और आज मेरे लेख (भाष्य) में एक–2 शब्द महर्षि जी से मिलाने का छलपूर्ण प्रयास करके आर्यों को यह बतलाना चाहते हैं कि मैं महर्षि से भिन्न पथ पर चल रहा हूँ। आप उस पत्र व्यवहार व आपके द्वारा मूर्तिपूजा समर्थन की बात से इन्कार कर रहे हैं। मेरे पास आपके पत्र थे, वे अनावश्यक समझकर मैंने अन्य अनेक पत्रों के साथ नष्ट कर दिये। केवल मेरा आपके नाम लिखा पत्र (वह भी मित्र की भाषा में) आर्य समाज भीनमाल के रिकार्ड में विद्यमान है (31 जुलाई 1999) जिसमें मैंने महर्षि की प्रमाणिकता को पुष्ट करने हेतु भी अनेक उदाहरण दिये, हैं तब भी आपने नहीं स्वीकारा था। आपके पास तो कोई भी प्रमाण नहीं है। मेरे पास दो साक्षी प्रिय जनकसिंह व प्रिय महेन्द्रसिंह भी हैं। आपके पास वह भी नहीं। जब आपने इस प्रकरण में मुझे मिथ्यावादी कहा (परोपकारी में भी लिखा) तब मैंने आपसे पूछा कि आप यह बताइये कि मेरा व आपका पत्रव्यवहार सोमनाथ त्यागी प्रकरण में क्यों हुआ? तब आप उत्तर न दे सके। आपको यह कहा कि कोई अपने पत्र की प्रति ही दिखाइये कि आपने मुझे क्या व क्यों लिखा? तब आप मौन रहे और हमारे वेद विज्ञान परिचय शिविर में इस 12–13 वर्ष पुराने प्रकरण पर झगड़ा करके शिविर में विघ्न डालने का कुत्सित प्रयास करना चाह रहे थे। क्या इस बात का निर्णायक कोई तीसरा व्यक्ति हो सकता है कि 12–13 वर्ष पुराना मेरा व आपका क्या संवाद व पत्रव्यवहार हुआ था? इस कारण मैंने अनुमति नहीं दी। क्या वह विवाद वेद विज्ञान परिचय शिविर में उठाने योग्य था? क्या सामान्य दिनों में मित्रता पूर्ण संवाद नहीं हो सकता था? परन्तु आप तो पूरे कूटनैतिक हो चलें हैं, इसी कारण तब आपने बहाना बनाया कि मैं तो (अर्थात् आप) ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य शैली पर संवाद करने भी आना चाहता हूँ। इस पत्र में भी आपकी शर्त पूर्व विवाद को उठाने की थी। जब मैंने आपको कहा– "सन् 1998 से वेद गोष्ठी में आपको मैंने कभी बोलते नहीं देखा। केवल अजमेर विश्वविद्यालय में एक बार आयुर्वेद पर बोले थे। मैंने आपको प्रायः वेद विज्ञान पर कभी प्रश्नोत्तर में भाग लेते भी कम देखा। कभी कुछ लिखते वा सत्संग में भी इस विषय पर संकेत मात्र भी बोलते नहीं देखा तब मैं समझ गया कि वेद विज्ञान का नाम लेकर यहाँ विवाद करके हमारे शिविर में विघ्न डालना ही आपका उद्देश्य है, पुनरपि मैंने सशर्त स्वीकार करते हुए कहा कि जिस प्रकार आप वर्षों से मेरा साहित्य (वेद विज्ञान विषयक) पढ़ते रहे हैं और उसमें कमी ढूंढ़ने का प्रयास करते रहे हैं परन्तु आज तक कभी मेरी कमी भी मुझे बतायी नहीं। मैंने ऋषि उद्यान में भी अनेक व्याख्यान दिये तब भी आपको प्रश्नोत्तर का साहस नहीं हुआ। अब अचानक यह उत्तेजना क्यों हो रही है? इसी कारण तथा नियमानुकूलता की दृष्टि से भी मैंने आपसे शर्त रखी कि आप अपनी ब्राह्मण भाष्य की शैली वा वेद विज्ञान विषयक शैली का एक नमूना रूप लेख वा पुस्तिका भेज दें ताकि मैं उस पर विचार कर सकूँ। तब आपने ऐसा नहीं करके उल्टे उद्दण्डतापूर्ण लिखा, "मुझसे मेरी शैली क्यों पूछते हैं? ...."

आर्यो! देखिये! मेरी शैली की कमी निकालने चले और अपनी शैली बताने को तैयार नहीं हैं। इतनी बात भी टुकड़ों–2 में क्रमशः हुई। **क्या ऐसे संवाद होते कभी सभ्य पुरुषों में देखा वा सुना है कि दूसरे की प्रतिज्ञा वर्षों से पढ़े, जाने और अपनी कोई प्रतिज्ञा न करे? मैंने आपकी संवाद शैली एवं विपक्षी के सत्य को कभी स्वीकार न करने की प्रवृत्ति को ऋषि उद्यान रहकर निकटता से देखा है। डॉ. धर्मवीर जी को तो कभी यह कहते देखा व सुना भी है कि यह हमें आज तक पता नहीं चला परन्तु आपको किसी भी विषय में प्रायः अपनी कमी कभी स्वीकारते नहीं देखा।** मेरी प्रथम पुस्तक **'सृष्टि का मूल उपादान कारण'** पर सत्वादि गुणों पर मुझसे आपकी पर्याप्त चर्चा हुयी परन्तु सार कुछ नहीं निकला। अन्त में आपने कमी बतायी कि आपकी (अर्थात् मुझ अग्निव्रत की) जन्म तिथि अंग्रेजी तिथि व हिन्दी तिथि में साम्यता नहीं हैं। जबकि पुस्तक में स्पष्ट लिखा था कि अंग्रेजी तिथि विद्यालय के अनुसार है। **ऐसे ऐसे व्यर्थ छिद्रान्वेषण करने वालों से विवाद करने के लिए क्या मेरे पास समय है? क्या मेरे पास कोई कार्य नहीं है? इस प्रकार शिविर में अपने विषयों को बंद करके ऐसे विवाद में कार्यक्रम की बलि देना मेरी मूर्खता ही होती। इस कारण आपकी उत्तेजना को परोपकारिणी सभा के षड्यन्त्रकारियों का षड्यन्त्र समझ कर, मैंने मना करते हुए इनसे तथा सत्यार्थ प्रकाश एवं अनेक विद्वानों का अपमान करने वाली संस्था से सदैव के लिए सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। मंत्रों के भाष्य पर सभा को पत्र इस कारण लिखना पड़ा कि कहीं कबीर पंथी रामपालदास जैसे किसी व्यक्ति के हाथ परोपकारी वा सार्वदेशिक के भाष्य न लग जायें, जो उन्हें टी.वी. चैनल के माध्यम से दिखा कर आर्य समाज को नीचा दिखाये। मेरा यह कदम सहानुभूतिपूर्वक था, इस कारण मैंने अपने लेख में न भाष्यकार विद्वानों का नाम लिखा और न प्रकाशकों (परोपकारी व सार्वदेशिक) का ही नाम लिखा।** सत्यजित् जी! आप परोपकारिणी सभा के प्रहरी अब बने हैं, जबकि मैं तो आर्य समाज, भीनमाल का अन्न खाकर भी परोपकारिणी सभा व इसके किसी भी अधिकारी की प्रतिष्ठा के विरुद्ध किसी विरोधी के आक्रमणों को सदैव रोकता रहा हूँ। **विधर्मियों के हाथ विष भी पीना पड़ा पुनरपि डा. धर्मवीर जी, डा. भवानीलाल जी भारतीय, डा. सुरेन्द्र कुमार जी, प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु जी आदि किसी के भी आग्रह पर गम्भीर अस्वस्थ रहते हुए भी विपक्षियों का मान मर्दन करता रहा। आप हों वा श्री गजानन्द जी वा डा. धर्मवीर जी सबकी लाज मैंने बचाने में कोई कसर नहीं रखी। क्या आप मुझसे सारी कहानी सार्वजनिक करवाना पुनः चाहते हो?** मुझे दुःख है कि इतने पर भी सभा ने कभी मेरे स्वास्थ्यादि के बारे में कोई आत्मीयता, सहयोग देना अपना कर्तव्य नहीं समझा। मैं ऋषि उद्यान में कुल मिलाकर लगभग तेरह माह रहा इसके लिए भी आप मुझ पर अपना उपकार जता चुके हैं। यह तो आपका आर्यत्व है? क्या मैं ऋषि उद्यान में निकम्मा बैठा सभा पर भार बना था? कोई बात नहीं, यह स्तर आपकी आध्यात्मिक साधना से ही प्राप्त हो सकता है। मैंने जो भी सभा का सहयोग किया, किसी विधर्मी से सभा व सभा के किसी विद्वान् वा अधिकारी अथवा सम्पूर्ण आर्य जगत् की लाज बचाने हेतु किसी को चुनौती दी, वह मेरा धर्म था। आप अथवा किसी पर कोई उपकार नहीं किया था परन्तु आप अथवा सभा उसी मुझको नीचा दिखाने को अपना कर्तव्य, तब से विशेष समझने लगे हैं, जब से मैंने सत्यार्थ प्रकाश प्रकरण में सभा के कुकृत्य के विरुद्ध कुछ बोलने का प्रयास किया। यह तामसिक प्रतिशोध आपके लिए धर्म हो सकता है। मैं इसे परमात्मा की न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हुए दृढ़ता से कहूँगा कि **सत्यार्थ प्रकाश प्रकरण में श्री अशोक जी आर्य के प्रयास को मैं पूर्णतः निष्काम व निष्पक्ष मानता हूँ और आपकी प्रवृत्ति को एक दादागीरी, अहंकार व हठ की पराकाष्ठा के रूप में देखते हुए भी सभी की एक मत होने की कामना व प्रार्थना करता हूँ।** अस्तु।

अब मैं आपके लेखों पर आता हूँ।

मेरे ऋषि भक्त आर्यो। जब मैंने विश्व के वैज्ञानिकों के समक्ष वेद की वैज्ञानिकता तथा ईश्वरीयता को सिद्ध करने का संकल्प लिया था, तब सोचा था कि यह संकल्प आज तक संसार में किसी ने लिया नहीं है। आर्यजगत् के अनेक विद्वान् व सामान्य आर्यजन मेरे प्रति स्नेही रहे हैं, तब निश्चित ही वे मेरे लक्ष्य व संकल्प से अपने को गौरवान्वित समझकर मेरे साथ जुड़कर सहयोग करेंगे, परन्तु आज उस धारणा के लगभग 7 वर्ष पश्चात् मैं अपने को अपने ही आर्यों के बीच कुछ एक मनसा व आर्थिक सहयोगियों को छोड़कर, एकाकी पा रहा हूँ। विभिन्न विद्वानों की अपने बारे में भाँति–2 की कटु टिप्पणियों को सुनता रहा हूँ। अब **सत्यजित् जी ने प्रथम बार लिखित रूप में मुझे महर्षि दयानन्द जी का विरोधी, छली, कपटी व ठग बताने के साथ–2 वेद विज्ञान के लिए सर्वथा अयोग्य अनपढ़ वा मूर्ख सिद्ध करते हुये मुझ पर तीव्र व्यंग्य किये हैं। यह अशिष्ट भाषा उस व्यक्ति की है, जो परोपकारी के माध्यम से अपने**

अध्यात्म का दिखावा करता है एवं जिसे वेद विज्ञान व ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में कभी एक लेख, व्याख्यान तक कभी लिखते व देते नहीं देखा है। आज मैं गम्भीर धर्म संकट में हूँ कि मैंने सितम्बर 2012 में अपने वेद विज्ञान शिविर में उपस्थित विद्वानों व आर्यों की उपस्थिति में घोषणा की थी कि अपने विरुद्ध किसी पत्रिका व पत्र को पढ़ूंगा ही नहीं ताकि उसका उत्तर देने के लिये सोचना नहीं पड़े। लेकिन मुझे दूरभाष से जानकारी मिल जाये एवं मेरे कार्य की जड़ को ही उखाड़ने हेतु आर्यों को प्रेरित किया जाये, **जिस कार्य के लिए आर्यजन मुझे तन, मन, व धन से सहयोग देते हैं, उसी कार्य के लिये मेरी योग्यता व ऋषि भक्ति पर गम्भीर प्रश्न खड़े किये जायें, तब कुछ आर्यजनों का भ्रमित होना स्वाभाविक है। दुर्भाग्य से आर्यों का स्वाध्याय नहीं रहा, अधिकांश आर्य सरल–हृदय हैं और भावुकतावश किसी न किसी विद्वान् से जुड़ जाते हैं। कोई अपनी नयी योजना लेकर आता है तो उससे और भी प्रभावित होते हैं।** कोई ऐश्वर्य वा भीड़ से, कोई ऐतिहासिक स्थानों के प्रति श्रद्धा से, कोई किसी के भाषण व लेखन से प्रभावित होते हैं। विद्वानों का पाण्डित्य, प्रतिभा व आचरण कैसा है, यह जानना तो सबके लिए सम्भव नहीं होता है और यदि पता भी चले तो उसकी उपेक्षा भी कर दी जाती है। ऐसी दशा में उनका विवेक उनका साथ नहीं देता, पर अपनी ऋषिभक्ति व उदारवृत्ति के कारण दान करते ही हैं। **उस दशा में किसी विद्वान् के विशेषकर मेरे जैसे अपूर्व व्रतधारी व एक सर्वथा नवीन मार्ग प्रतीत होने वाले के विरुद्ध यदि विद्वान्, संस्थायें व आर्य समाज का मीडिया ही झण्डा बुलन्द करने लगें, तब आर्यजन उन लेखों व तर्कों को लेकर किसी अन्य निकटवर्ती विद्वान् का पक्ष जानना चाहेंगे ही, और वह भी हंस कर कह दे," सत्यजित् जी का लेख उचित ही है। अग्निव्रत जी की इतनी योग्यता थोड़ी ही है कि आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री, स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक, डा. कपिलदेव जी द्विवेदी, स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती एवं पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय जैसे प्रसिद्ध विद्वानों की कमियां ढूंढ़ रहे हैं।** सत्यजित् जी आयुर्वेद में एम.डी. हैं। व्याकरण, निरुक्त, मीमांसा पर्यन्त षड्दर्शन पढ़ रखे हैं। डा. धर्मवीर जी आर्य जगत् के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, तो उन्हें अग्निव्रत जी की कमियां निकालने का अधिकार क्यों नहीं है? आदि", तब कितने धैर्यवानों का धैर्य नहीं डग मगायेगा? आज आर्यजगत् में मेरे समर्थन में कम विरोध में बहुत विद्वान् हैं, तब सामान्य आर्यजन कहाँ जायेंगे? कोई उन्हें सत्य मानेगा, तो कोई मेरे प्रति श्रद्धाभाव से उनके लेख की उपेक्षा करेगा, कोई विद्वानों के विवाद पर मौन होकर घर बैठ जायेंगे। अपने विवेक से निर्णय करने की क्षमता सामान्य आर्यजन में है ही नहीं, तब इसका सीधा प्रभाव मेरे आर्थिक स्रोत पर होगा, **जिसको नष्ट व बाधित करना ही परोपकारणी सभा का लक्ष्य है।** तब उनका मन्तव्य पूर्ण होगा ही। उनको स्वयं अर्थ की चिन्ता है नहीं। करोड़ों का धन सुरक्षित है, जबकि हमारा न्यास प्रतिदिन का खर्च चलाने मात्र की क्षमता रखने वाला कुम्भीधान्य ब्राह्मण है। **हे सत्यजित् जी! आप अपनी पूरी शक्ति लगायें तो भी ईश्वरीय व्यवस्था को नहीं बदल सकते और अत्याचार व अहंकार का फल जन्म–जन्मान्तरों तक भी हर प्राणी को भोगना ही पड़ता है। याद रखो कुम्भीधान्य ब्राह्मणों ने ही वैदिक धर्म, संस्कृति व ज्ञान विज्ञान को बचाया है। बड़े–2 राजसी भोग भोगने वाले लोगों ने यश भले ही कमाया हो परन्तु धर्म नहीं कमाया।** हाँ, सुधी पाठक मेरे इस कथन को भी तब तक व्यर्थ मानेंगे, जब तक कि सत्यजित् जी के प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलेगा।

यदि मैं उत्तर दूंगा, तो कुछ लोग कहेंगे कि आप बार बार प्रतिज्ञा करते हैं कि किसी का उत्तर नहीं दूंगा, फिर लिखने बैठ जाते हैं। इससे समय, श्रम व धन तीनों का दुरुपयोग होता है। और उत्तर नहीं दूं तो कुछ कहेगें कि बिना योग्यता के घोषणा कर बैठे, इतना दान मांगा व मांग रहे हैं। आश्रम बना लिया परन्तु अब तक जो अपने कार्य का नमूना दिखाया वह सत्यजित् जी ने मिथ्या व ऋषि विरुद्ध सिद्ध कर दिया। अब मैं तो गम्भीर धर्म संकट में फँसा हूँ। एक ओर कूंआ है तो दूसरी ओर खाई है। यदि इन विद्वानों की वैमनस्यता से व्यथित होकर आश्रम व आर्य समाज छोड़ दूं, तो कहाँ जाऊं? यदि कहीं निर्जन स्थान पर एकाकी साधना करूं, जिसके लिये मेरा आत्मा सतत इच्छा करता है। **मुझे आर्य समाज में अनेकत्र अंधेरा, अन्याय, अहंकार, दुराग्रह, छल, कपट, असत्य, वैर, ईर्ष्या, दुराचार, दिखाई देता है, तो उसी प्रकार वैराग्य होता है, जिस प्रकार शासकीय सेवा में रिश्वतखोरी आदि देखकर वैराग्य हुआ था और अन्ततः उससे मुक्त हो ही गया।** क्या अंधकारपूर्ण आर्य समाज से भी मुक्ति पाऊं ? यदि ऐसा करूं तो भी इन विद्वानों को कोई पीड़ा नहीं होगी। हॉ, व्यंग्य और तीव्र होंगे कि देखो, जब कुछ समझ न आया, अपनी अयोग्यता सिद्ध हो गयी, तो पलायन कर गया। इस निर्मम, संवेदनहीन, ईर्ष्यालु, विद्वत्समाज में मैत्री करुणा मुदिता कहाँ बची है? यदि किसी में बची भी है, तो उन्हें दुर्जनों ने पीड़ित कर रखा है। वे स्वयं दुःखी हैं।

दूसरा विचार यह आता है कि मैंने वेदों को विश्व में प्रतिष्ठित करने का संकल्प लिया था। हजारों व लाखों आर्यों के समक्ष घोषणा भी की। लगभग 7–8 वर्ष इसी नाम पर दान लेता रहा, इसी दान से भोजन, वस्त्र, चिकित्सादि व्यय करता रहा, इसी निमित्त कर्मचारियों को समुचित वेतन देता रहा, छोटा सा आश्रम भी बनाया, रफ कार्य भी पूर्ण हुआ। विश्वस्तरीय चार वैज्ञानिकों की मैत्री भी मिली, पर्याप्त प्रगति भी हुयी। फेयर कार्य का इस बोध दिवस (शिवरात्रि) शुभारम्भ भी ईश्वर प्रार्थना से किया। वर्तमान उच्चस्तरीय भौतिक विज्ञान का आवश्यक अध्ययन लगभग समाप्त ही हुआ, उस समय इन ईर्ष्यालु विद्वानों वा आर्यजगत् की दुरवस्था से परेशान होकर कहीं चला जाऊँ, तो अब तक किये हुए का मूल्य क्या रहा? मेरा कार्य ऐसा तो है नहीं, जिसे कोई भी कर लेगा। मेरा काम मुझे ही करना होगा अन्यथा मेरा लेखन, चिन्तन, दग्धबीज की भाँति निष्फल हो जायेगा। यह सब न केवल मेरे सहयोगी श्रद्धालु कार्यकर्ता व दानदाताओं के साथ घोर अन्याय होगा अपितु मेरी प्रतिज्ञा की मृत्यु होने का पाप भी मुझे लगेगा और ऐसा करके मुझे किसी निर्जन स्थान में भी शान्ति कैसे मिलेगी? तब आत्मा यही कहता है कि यह आर्य समाज भले ही भंयकर मगरों से युक्त गहरी नदी हो, मुझे भले ही मगरों से लड़ना नहीं आता हो पुनरपि इस नदी में मगरों का ग्रास बनकर व डूबकर मरना श्रेयस्कर है, न कि इससे पलायन करना। यदि मैंने मन–वचन–कर्म से सत्य पालन के साथ ईश्वर पर विश्वास किया है। यदि मैंने मनसा वाचाकर्मणा सदा सबका पूर्ण हित चाहा व निष्काम वृति से कार्य कर रहा हूँ तो ईश्वर मेरी अवश्य रक्षा करेगा अन्यथा प्रारब्ध जो भी होगा, मेरे लिये हितकर ही होगा। स्वेच्छा से पलायन पाप होगा। इस कारण **'न दैन्यं न पलायनम्'** इस गीता उपदेश को हृदय में धारण कर एक बार सत्यजित् जी जैसे विद्वानों के बोए कांटे साफ करना अनिवार्य समझकर यह लिखने को उद्यत हो रहा हूँ। फिर भी वे कांटे बोते रहें, तो बोने वाले स्वतंत्र हैं। परोपकारी मार्च (प्रथम) का लेख ही जब आया तब मैंने सोचा कि लिखने दें, मैं अपने कार्य मैं लगा रहूँ। इनके पास तो पत्रिका है, पर्याप्त संसाधन व एक से बढ़कर एक विवादी लेखक है, मैं इनसे उलझ कर समय क्यों नष्ट करूँ? आदरणीय आचार्य वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय ने फोन किया, ''आप हस्ती चाल चलते रहें। आवश्यक होगा तो मैं इन्हें उत्तर दूँगा।'' परन्तु **जब दूसरा लेख फिर आ गया, तो मुझे प्रतीत हुआ कि इसका उत्तर मैं न दूँ तो मेरा आर्य समाज मैं रहकर यह अनुसंधान कार्य करना ही व्यर्थ है। इस कारण मुझे एक बार स्वयं उत्तर देने के लिये बाध्य होना पड़ा।**

आपने परोपकारी मार्च प्रथम 2013 में स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक तथा आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री के ऋ. १०.८६.१६–१७ मंत्रों का भाष्य यथावत् प्रकाशित करके उसे गृहस्थ विज्ञान बताकर मुझ पर व्यंग्य किये हैं। आपके लेख का शीर्षक है– **''नैष्ठिक अग्निव्रत के पत्र का उत्तर एंव लेख की समीक्षा''** इस पर डा. धर्मवीर जी की सम्पादकीय टिप्पणी है– '' नैष्ठिक अग्निव्रत जी ने अपने एक पत्र में परोपकारणी सभा पर गंभीर आक्षेप किये है .... अतः उनकी आलोचना का उत्तर देना व उनके लेख की समीक्षा करना अपरिहार्य हो गया है। ....''

(1) गृहस्थ विज्ञान वा अश्लीलता

उत्तर :– इस संस्थान के पत्रांक 927–1176 दिनांक 6.12.2012 द्वारा मैंने परोपकारणी सभा के स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक के उपर्युक्त दो मंत्रों के भाष्य को अश्लील, लज्जाजनक व अनावश्यक बता कर अपनी गम्भीर आपत्ति की थी। सार्वदेशिक सभा ने यह भाष्य आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री से कराया था। उनका भी वैसा ही है। उन्होंने यह अपराध और किया था कि भाष्यकार के रूप में जिल्द पर महर्षि जी का नाम लिख दिया। मैंने सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के शतपथ ब्राह्मण भाष्य में मांसाहार व पशुबलि के क्रूर वर्णन की कड़ी आलोचना की थी। इस प्रकार सार्वदेशिक का दोष अधिक बताया था। इन सभाओं के अलावा अन्य प्रकाशन में डा. कपिलदेव जी द्विवेदी जिन्होंने अथर्ववेद का काल राजा परीक्षित् के काल के पश्चात् का मानना, उसमें जादू टोना मानना, ऐतरेय ब्राह्मण में नरबलि की चर्चा स्वीकार करना, भले ही निन्दित रूप में की गयी हो, स्वामी सत्यप्रकाश जी सरस्वती द्वारा महर्षि के वेद भाष्य के स्थान पर पश्चिमी विद्वानों के मूर्खतापूर्ण भाष्यों को महत्व देना, अनेकत्र संस्कृत साहित्य में अश्लील वर्णन आदि का होना आदि विषयों पर विद्वानों का संवाद कराकर इस समस्या के समाधान की प्रार्थना इन सभाओं से की गयी थी। इस हेतु मैंने इन शीर्ष सभाओं से पौराणिक विद्वानों को भी बुलाकर संस्कृत भाषा को इस पाप से मुक्त करने का कोई उपाय खोजने की प्रार्थना की थी। **मैंने विचार किया था कि आज विश्व में वैसे ही संस्कृत भाषा की उपेक्षा हो रही है। वेद शास्त्रों में अश्लीलता, मांसाहार, पशुबलि, नरबलि**

आदि गम्भीर आरोप वेद विरोधी लोग लगा रहे हैं। सत्ता, मीडिया व वर्तमान शिक्षा सभी वेद विरोधी व राष्ट्र विरोधी बन चुके हैं, तब यदि उन्हें इन बातों का प्रमाण आर्य समाज की शीर्ष सभाओं के प्रकाशनों व शीर्ष आर्य विद्वानों की पुस्तकों में मिल जायेगा अथवा महर्षि के विरुद्ध वर्षों से विषवमन करने वाले कबीरपंथी रामपालदास जैसों के हाथ ये सारी बातें किसी प्रकार पहुँच जायें, तो वह टी.वी. चैनल के माध्यम से आर्यों पर प्रहार करेगा, तब क्या होगा? इसी आशंका से इन सभाओं, सम्पूर्ण आर्य जगत् व संस्कृत समाज के प्रति सहानुभूति का भाव रखते हुए ही निवेदन किया व सचेत किया था, तब पाठक विचारें कि क्या यह इन सभाओं व आर्य समाज के प्रति कोई अपराध था जिसके लिए ये विद्वान् मुझे ही दोषी बताने लगे। पाठकगण! देखें, कि जब मैंने पत्र में इतने गम्भीर दोषों की ओर गम्भीर ध्यान दिलाया तो उसमें से डा. धर्मवीर जी ने सत्यजित् जी से केवल दो मंत्रों के भाष्य पर ही समीक्षा क्यों लिखवायी गयी। क्या मांसाहार, पशुबलि आदि उपर्युक्त सारे पापों से आप सहमत हैं? क्या इसके समर्थन में भी सत्यजित् जी वा उनका कोई मित्र ऐसे ही लेख आगे लिखेगा? यदि ऐसा है तो आप सायण, महीधर, विदेशी विद्वानों एवं विभिन्न विधर्मियों द्वारा वेद व आर्यों के विषयों में लगाये जाने वाले पापों पर क्यों आपत्ति करते हैं? **आश्चर्य व लज्जा का विषय है कि उपर्युक्त गम्भीर पापों का जिनके विरुद्ध महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी, उनका खुला वा मौन समर्थन तो ऋषि भक्ति व पांडित्य का प्रमाण बन गया और जो व्यक्ति इन पापों के प्रति सावधान करे, वह महर्षि का विरोधी, अज्ञानी व ठग बन गया?** ध्यान रहे कि इस पाप पर जो विद्वान् मौन बैठे हैं, वे भी कम अपराधी नहीं हैं? क्या ऋषि ऐसे पापों पर मौन बैठे थे?

सत्यजित् जी ने मेरे द्वारा आपत्ति व्यक्त किये हुए उपर्युक्त दोनों मंत्रों के भाष्य को यथावत् परोपकारी में प्रकाशित भी कर दिया और इन भाष्यों को गृहस्थ विज्ञान का उद्घाटक एवं गृहस्थों के लिए आवश्यक बताया है। साथ ही लिखा है– ''ये भाष्य नैष्ठिक जी को घोर अश्लील, भद्दे, असभ्यतापूर्ण लगे, इसमें उनका नैष्ठिक होना कारण हो सकता है .... नैष्ठिकों का पृथिवी पर आगमन भी बिना इसके सम्भव नहीं है। महर्षि ने गृहस्थ धर्म, गर्भाधान आदि का वर्णन किया है .... यह भी एक विद्या है। .... आदि''

उत्तर :– इन मंत्रों के भाष्य की भाषा पर ध्यान दीजिये कि यह कौन सा विज्ञान है? इसे विज्ञान वही कहेगा जो विज्ञान की वर्णमाला भी नहीं जानता हो तथा जिसकी मनोवृत्ति भी निम्न स्तर की हो। मैं तो नैष्ठिक हूँ परन्तु मेरे पास एक मेरे न्यासी प्रोफेसर वसन्त जी मदनसुरे मेरे पास आते रहते हैं। कुछ दिन पहले मेरे पास लगभग 22 दिन तक रहे। वे गृहस्थ हैं, M.Tech, Ph.D हैं तथा वैदिक वाङ्मय का भी गम्भीर स्वाध्याय है। उनका कहना था, ''यह भाष्य गृहस्थों के लिए नहीं बल्कि वाममार्गियों के लिए है।'' वे न्यास के मंत्री जो प्राकृतिक चिकित्सा व जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान में स्नातक तथा विज्ञान के अध्यापक हैं तथा गृहस्थ भी हैं, से कह रहे थे कि इस भाष्य की भाषा को निम्न मनोवृत्ति वाला गंवार व्यक्ति ही बोल वा लिख सकता है। मेरा एक शिष्य आपका भी परिचित प्रिय महेन्द्रसिंह जो दस वर्ष ऋषि उद्यान में रहा है, अब गृहस्थ भी है, की भी कठोर टिप्पणी थी। उनका यह भी कहना था कि इन ऋषियों ने इन मंत्रों में क्या साक्षात् किया होगा, फिर उसका संसार में क्या, कैसे व क्यों प्रचार किया होगा? यह तो जानवर भी जानते हैं। मेरे सारे कार्यकर्ता गृहस्थ हैं, सभी ने इस भाष्य को धिक्कारा। गृहस्थ डा. उप्रेती जी इस भाष्य से लज्जित हुए। गृहस्थ प्रो. रुपकिशोर जी शास्त्री ने इसकी तुलना महीधर के भाष्य से की और मेरा आभार जताया। ब्रह्मचारी आचार्य धर्मबन्धु जी के साथ गृहस्थ डा. मोक्षराज जी अन्य गृहस्थ कार्यकर्ता लज्जित हुए। **एक वृद्ध व्यक्ति इसे पढ़कर मेरे पास आकर दुःखी होकर बोले ''गुरु जी! परोपकारी पत्रिका को बन्द करा दीजिए। यह बहुत गन्दा काम कर रही है।'' परन्तु आप नैष्ठिकों व आपके गृहस्थों को बड़ा आनन्द आ रहा है। आपने इस प्रकार मेरे लेख की समीक्षा कर आर्य जनता के साथ कपट व मिथ्याचार किया भी है।** प्रिय अभिषेक आर्य द्वारा सभा को भेजे रजिस्टर्ड पत्र, जो अनेकत्र भेजा गया था, में मैंने आप जैसी तर्क बुद्धि वालों की इसी प्रकार की दो शंकाओं का समाधान भी किया था। आपने पत्रिका में छपे लेखों की चर्चा की परन्तु उस शंका समाधान की चर्चा गुप्त रखी। **क्या यही मिथ्याचार आपको शोभा देता है?** आप गृहस्थ धर्म की अनावश्यक वकालत करने के साथ मेरे उस समाधान की चर्चा करते हुए उसकी भी समीक्षा करते, तभी पारदर्शिता होती परन्तु आप तो द्वेषान्ध होकर मुझे नीचा दिखाने का लक्ष्य लेकर चले थे, तब क्यों आप मेरे समाधान को अपने पाठकों को बताते? आप कहते हैं, यह वर्णन सत्य है **परन्तु क्या सभी सत्य कहने आवश्यक हैं? आप कहते हैं कि इन्हीं (अर्थात् जननांगों) से ही नैष्ठिक भी उत्पन्न हुए तब क्या कपड़े खोल–2 कर चौराहे पर प्रदर्शन किया जाये? क्या पशुओं की भाँति खुला यौनाचार होवे?** यदि कोई इसे

अश्लील बताये तो उसको वही उत्तर दिया जाये, जो आपने मुझे दिया है? बोलो! क्या यही आपको अभीष्ट है? क्या माता को 'पिता की स्त्री' कहकर सम्बोधित इसलिए किया जाये क्योंकि यह सत्य है अथवा पिता को 'माता का पति' कहकर पुकारा जाये? महोदय! **सत्य तो बहुत अश्लील भी हो सकता है। सभी सत्यों को कहना, दिखाना न तो आवश्यक है और न शोभनीय। कोई गंवार, लम्पट आपके इस सत्य को अपनी भाषा में यदि कहेगा तो आपको भी कान बन्द करने पड़ेंगे। मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि आप महीधर के अश्लील वेद भाष्य, जिन्हें महर्षि ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उद्धृत किया है, के विषय में अपने गृहस्थ साथी विद्वानों से पूछें कि क्या उनमें कुछ भी सच्चाई नहीं है? वे अधिक बता सकेंगे। यदि उनमें भी कुछ सत्य हो तो फिर परोपकारी में महर्षि के विरुद्ध फतवा जारी करना क्योंकि आप लोगों का यही तो एक मात्र काम बचा है।** आप इस भाष्य को लेकर किसी गुप्त रोग विशेषज्ञ से पूछना कि इस भाष्य में कितना गम्भीर व शिष्ट विज्ञान है? क्या इससे अच्छी सभ्य भाषा नहीं हो सकती थी? परमात्मा की ऐसी भाषा है, तो गांव, नगर की गलियों में भटकते कुकर्मी युवा–युवतियों की भाषा को दोष कैसे दिया जा सकता है? इन्हीं मंत्रो के सायण भाष्य को अश्लीलता के कारण **प्रसिद्ध आर्य विद्वान् पं. शिवशंकर जी काव्यतीर्थ ने 'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय' पुस्तक में अश्लील व असभ्य कहा, पं. जयदेव शर्मा, मीमांसातीर्थ ने इसे नकार कर आध्यात्मिक भाष्य किया, दयानन्द संस्थान के महात्मा वेदभिक्षु जी ने पं. शिवशंकर जी का अनुकरण किया। मेरे भाई! जब इन्होंने अश्लीलता को नहीं स्वीकारा, तब मैंने कैसे अपराध कर दिया?** क्या आपको आर्य विद्वानों की अश्लीलता तो स्वीकार्य है और सायण की नहीं? क्या ऐसे पक्षपातपूर्ण व्यवहार को महर्षि ने अधर्म नहीं कहा? आप ऋग्वेद १.१२६.१६ व १७ मंत्र 'आगधिता परिगधिता ...... 'एवं 'उपोपमे परामृश .....' के सायण भाष्य व महर्षि के इन्हीं मंत्रों के भाष्यों की तुलना करें। इनके सायण भाष्य पर प्रसिद्ध आर्य विद्वान् पं. धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की कठोर टिप्पणी **'वेदों का यथार्थ स्वरूप'** नामक ग्रन्थ में की है, को भी पढ़ लें। **आपकी दृष्टि में तो सायण के ये अश्लील भाष्य भी स्वाभाविक सत्य की श्रेणी में आयेंगे, क्योंकि आप लोगों की साधना ऐसी दिव्य दृष्टि ही देती है।** मेरी साधना तो ऐसे भद्दे भाष्यों के प्रति घृणा व आक्रोश ही उत्पन्न करती है और सत्य का दर्शन कराती है। इस कारण मैं पुनः कह रहा हूँ कि **यह भाष्य ही सर्वथा गलत है। इस प्रकार की स्थूल बातें परमात्मा बताये तब सब सत्य विद्या के प्रकाशनार्थ वेद एक ऐसा ग्रन्थ होगा जिसे उठाने के लिए एक पूरी रेलगाड़ी की आवश्यकता होगी?** आपके इस तथाकथित विज्ञान से तो आज का प्राणिशास्त्र अथवा चिकित्सा शास्त्र कई गुणा शिष्ट भाषा व गम्भीर भाव वाला है। क्या वेद की यही दुर्गति आपको चाहिए, तो करें, आप स्वतंत्र हैं? आप महर्षि जी के गृहस्थ विषयक उपदेशों की तुलना इससे कर रहे हैं। क्या गर्भाधान प्रकरण की भाषा ऐसी अश्लील है? क्या उनके जैसी शिक्षा इस भाष्य में है? महर्षि ने भी संस्कृत साहित्य में धूर्त व लम्पटों के विभिन्न रतिबन्धों का उल्लेख देखा होगा। इसी कारण उन्हें वह प्रकरण एक सत्य ज्ञान हेतु लिखना पड़ा, परन्तु इस भाष्य में क्या ऐसा कुछ है? सत्य–2 की रट लगा रहे हैं तो ऐसे ही सत्यों पर लेख माला प्रारम्भ कर दीजिए। परोपकारी की ग्राहक संख्या चमत्कारी रूप से बढ़ जायेगी। **आपको एक सलाह है कि आप अन्य कार्य छोड़कर अर्थात् अध्यात्म, चिन्तन, प्रवचनादि का त्याग कर गाँव, नगरों के लम्पटों की गालियां सुनने का प्रयास किया करें, फिर खोज करें कि क्या उनमें से कुछ बातें सत्य व स्वाभाविक हैं, क्या? अरे क्या हो गया है, एक चरित्रवान् विद्वान् ब्रह्मचारी को? इस विषय पर भड़वेपन की चर्चा मैं अधिक गहराई से नहीं करना चाहता, आपको ही यह चर्चा प्रिय बनी रहे, यही कामना है।** विज्ञान कुछ मैंने भी पढ़ा है। कुछ पशुपालन विज्ञान भी पढ़ा है। **विज्ञान को कहने का एक ढंग एवं उसकी अपनी गम्भीरता होती है,** वह यहाँ आप लोगों को दिखाई देती है, मुझे कदापि नहीं। अपुष्टरूपेण सुना है कि मेरे प्रति विरोध दर्शाने हेतु कोई–2 विद्वान् गृहस्थों को पति–पत्नी प्रेम बढ़ाने हेतु भर्तृहरि का श्रृंगार शतक व काम सूत्र पढ़ने की शिक्षा देने लगे हैं। समाधि, मुक्ति, परमात्मा की चर्चा छोड़कर अब यह उनका प्रिय विषय बन रहा है। ये महानुभाव गृहस्थों के लिए रामायण पढ़ने की शिक्षा नहीं देंगे। अहो! कैसी निर्लज्जता है? अब आगे इनका कहना है।

"नैष्ठिक अग्निव्रत जी के अनुसार वेद छन्दों का समूह है। छन्द कम्पन Vibrations के रूप में हैं, छन्द को उन्होंने प्राण भी कहा। अतः उनके अनुसार प्राणों का समूह वेद है। इससे यह भी स्पष्ट है कि छन्द शब्द से उनका तात्पर्य वेद मंत्रों के गायत्री–त्रिष्टुप् आदि छन्दों से नहीं है। उनके अनुसार छन्द सृष्टि प्रक्रिया में समय–2 पर उत्पन्न होते रहते हैं, ... अर्थात् जड़ पदार्थ से वेद की उत्पत्ति हुयी है। निश्चित

ही वेद भी अन्य जड़ वस्तुओं के समान कोई जड़ द्रव्य होना चाहिए। महर्षि के अनुसार वेद ज्ञान रूप हैं। ज्ञान के विकार से पृथिव्यादि नहीं बनते। अतः महर्षि का वेद (ज्ञानरूप) भिन्न है व नैष्ठिक जी का वेद (छन्द = प्राण का समूह) भिन्न है। उनके अनुसार जिस छन्द–प्राण–वेद के विकार से सूर्यादि लोक बने, वह वेद ज्ञानरूप नहीं हो सकता। उनके अनुसार तो वेद को इस जगत् का उपादान कारण मानना होगा। महर्षि के अनुकूल मान्यता रखने व भाष्य करने का गौरव रखने वाले नै. अग्निव्रत जी क्या बतायेंगे कि वेद का यह स्वरूप महर्षि ने कहाँ बताया है? व यह महर्षि के मन्तव्य के अनुकूल कैसे है? नैष्ठिक जी के अनुसार पहले छन्द = प्राण = वेद बने, फिर अग्नि, वायु, सूर्यादि बने। जबकि महर्षि मानव सृष्टि के आदि में जब सूर्य–पृथ्वी आदि बन चुके हैं, तब वेदों की सृष्टि मानते हैं। ....''

(2) वैदिक छन्द विज्ञान

उत्तर :– यदि सत्यजित् जी ने पिंगलछन्दशास्त्र, छान्दोग्यादि उपनिषद्, विभिन्न ब्राह्मणग्रन्थ, महर्षि जी के पश्चात् वैदिक वाङ्मय के सबसे गम्भीर अनुसंधानवेत्ता जिन्होंने चुनौती पूर्ण ढंग से पश्चिमी विद्वानों के वेद ज्ञान की समीक्षा करके वैदिक विज्ञान व इतिहास के क्षेत्र में क्रान्तिकारी कार्य किया था, उन महाविद्वान् पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर के ग्रन्थों विशेषकर निरुक्त भाष्य व वेदविद्यानिदर्शन तथा प्रख्यात वैदिक विद्वान् पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक के ग्रन्थों को गम्भीरता से पढ़ने का प्रयत्न करते, तो उन्हें ऐसा मतिविभ्रम कभी न होता। यदि महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका व उनके यजुर्वेद भाष्य को भी बुद्धिपूर्वक पढ़ते तब भी कुछ समझ आती परन्तु **जब स्वयं को ही वैयाकरण, मीमांसक, दार्शनिक, नैरुक्त वा योगी मानकर शास्त्रों की तोतारटन्त की जाती है, तब यही गति होती है, जो इनकी हो रही है।** मैं पूछता हूँ कि वेद गुण है वा द्रव्य? महर्षि ने वेद को ऋ.भा.भू. में ज्ञान रूप माना है। (देखें– वेदोत्पत्ति विषय) आप भी ऐसा मानते हैं। तो वेदनित्यत्व पर चर्चा में वेद की नित्यता को शब्द की नित्यता के रूप में माना है। इसका तात्पर्य वेद शब्द रूप भी है। वेदोत्पत्ति विषय में वेद को गायत्री आदि छन्दरूप भी कहा है। अब वेद के तीन स्वरूप महर्षि के अनुसार ही सिद्ध हुए १.ज्ञान, २. शब्द, ३. छन्द। इनमें से आपको क्या स्वीकार है? यदि आप महर्षि को प्रमाण मानते है, तो वेद के तीनों ही रूप हुए, तब इन तीनों में काई भेद नहीं होना चाहिये। अब ये तीनों गुण हैं वा द्रव्य? यदि गुण हैं, तो किसके? यह सभी जानते हैं कि 'ज्ञान' गुण केवल चेतन का है। वह चेतन ईश्वर हो अथवा जीव। तब सिद्ध हुआ कि ज्ञान इनके साथ सदैव रहता है परन्तु ईश्वरीय ज्ञान प्राप्तकर जीव का ज्ञान वृद्धि को प्राप्त करता रह सकता है। अब वह ज्ञान ईश्वर से जीव में कैसे आता है? आप किसी व्यक्ति को उपदेश देते हैं, तो आपका ज्ञान उसके पास कैसे पहुँचता है? यदि आप बोलकर शब्द रूप में किसी को ज्ञान देते हैं, तब वह ज्ञान सुनकर उसके पास पहुँचा। यहाँ शब्द एक ध्वनि तरंग है, जो जड़ है और वह जड़ उस चेतन व्यक्ति में ज्ञान पैदा कर रहा है। यदि शब्द आकाश के गुण के रूप में देखें तो आकाश में उत्पन्न कम्पन जो कि तरंग रूप है, के द्वारा ज्ञान उत्पन्न हुआ। यदि आप किसी इलेक्ट्रोनिक साधन से अपना संदेश भेजें तो वहाँ भी प्रथम तो ध्वनि को रेडियो तरंगों में बदला, फिर रेडियो तरंगों को एक उपकरण द्वारा ध्वनि तरंगों में बदला, फिर उन ध्वनि तरंगों से आपके मस्तिष्क में ज्ञान हुआ। यदि आप बोलने के स्थान पर लिखकर ज्ञान दें, तो लिपि भी रूपवती होने से जड़ है और उस जड़ पर प्रकाश की तरंगों के माध्यम से उसके वे नेत्र व नेत्र से तरंगों, संवेदनाओं जो सभी जड़ हैं 'मन' इन्द्रियादि भी जड़ हैं, के माध्यम से उस व्यक्ति को पढ़कर ज्ञान हुआ। अब बताइये, जड़ के माध्यम से एक चेतन ने दूसरे चेतन को ज्ञान दिया वा नहीं? **कोई माई का लाल बिना जड़ संसाधनों के ज्ञान को किसी को देकर वा किसी से लेकर बताये?** क्योंकि आप लोग तो अपने को महान् योगी मानते हैं। **वैसे आपके योग में विभूतिपाद मिथ्या है** परन्तु मैं फिर भी मान लेता हूँ कि आप किसी विभूति से दूसरे को ज्ञानी बना देंगे, तब भी आपके मन की तरंगों से किसी अन्य के मन को ज्ञान हो सकता है। यहाँ भी ज्ञान का साधन जड़ ही हुआ, ज्ञान का उत्सर्जन व अवशोषण अर्थात् आदान प्रदान जड़ साधन जो अन्तःकरण से और आकाश, वायु, अग्नि महाभूत पर्यन्त आवश्यक माध्यमों के बिना इस जगत् में कभी कोई सम्भव नहीं कर सका है। आप कहेंगे कि परमात्मा को लिपि व वाणी दोनों ही आवश्यक नहीं हैं। वह तो अपने ज्ञान का प्रकाश उन चार महर्षियों के आत्मा में ही कर देता है। मैं पूछता हूँ कि महर्षि के इस कथन का क्या तात्पर्य है? **क्या वेद मंत्रों के रूप में ज्ञान उन ऋषियों के आत्मा में प्रकट होने में उनके चित्त का कोई योगदान नहीं? यदि हाँ, तो चित्त भी तो जड़ पदार्थ है।** फिर आप यह भी तो विचारें कि महर्षि वेदनित्यत्व विषय पर अपनी भूमिका में लिखते है **''किन्तु आकाश में शब्द की प्राप्ति होने से शब्द तो अखण्ड एकरस सर्वत्र भर रहे हैं। .... शब्द**

नित्य है। ..... वेदों के शब्द सब प्रकार से नित्य बने रहते हैं।'' कहें! सत्यजित् जी। ये शब्द जड़ हैं वा चेतन? इनको ज्ञान का ज्ञापक अर्थात् ज्ञान प्रदान करने वाले कहेगें वा नहीं? अब इन शब्दों का रूप क्या है? क्या आप गायत्र्यादि छन्दों को शब्दों का समुदाय नहीं कहेंगे? तब ये छन्द तरंग रूप होंगे वा नहीं और ये तरंगें सूक्ष्म वायु रूप जिन्हें अभी वर्तमान विज्ञान पूर्णतः नहीं जानता, व आकाश का मिश्रितरूप है वा नहीं? इसी सूक्ष्म वायु को प्राण कहते हैं, इसी कारण कौषीतकि ब्राह्मण में कहा है– 'प्राणाः वै छन्दांसि' ७.६. १७.२ क्योंकि प्राण व वायु का मुख्य गुण होता है, बल, इसी कारण गो. २.१.२० में कहा 'छन्दांसि वै वाजिनः .....' इन्हीं प्रमाणों के आधार पर महर्षि ने 'छन्द' का अर्थ यजुर्वेद भाष्य में अनेकत्र 'बल' बलकारी, ऊर्जनम् आदि किया है। कहाँ–2 के पते दूँ? आप कुछ गम्भीर स्वाध्याय करिये तब आपको स्वतः ही अनेक प्रमाण मिल जायेंगे। इस छन्द का अर्थ भी महर्षि ने किया है। ये प्रकाशादि अर्थ महर्षि ने कहाँ से व क्यों लिए? क्या आपने कभी विचारा है? आप सबको मूर्ख बनाते हैं कि नैष्ठिक जी का छन्द गायत्री आदि नहीं है बल्कि कुछ और है। अब इस पर जान लें। पिगंल छन्द शास्त्र प्रसिद्ध व प्रमाणिक ग्रन्थ है, जिसे पढ़े बिना आप छन्दों के विषय में कुछ भी नहीं जान सकते। क्या आपने उसे कभी पढ़ा है? यदि नहीं तो बिना पढ़े क्यों उछल रहे हैं और यदि हाँ, तो क्या आपने विचारा है कि उसमें कहा है कि **'सित–सारंग–पिशंगकृष्ण–नीललोहित–गौरा–वर्णाः** ३/६५' अर्थात् गायत्र्यादि सातों छन्दों के सात रंग होते हैं? क्या आप बतायेंगे कि ये रंग किसका धर्म है? महर्षि यास्क ने दृष्टि कर्म क्या अग्नि का नहीं माना है? तब क्या ये छन्द अग्निरूप वा अग्नि के उपादान कारण नहीं हुए? इस प्रकार ये गायत्री आदि सूक्ष्म वायु रूप व अग्नि तत्व के उपादान सिद्ध होते हैं। हर छन्द का देवता व गोत्र जो महर्षि पिंगल ने दिया है, उस पर कभी विचार करने का सामर्थ्य प्राप्त करने का प्रयास वा साधना करकें देखें और यदि यह योग्यता है, तब द्वेष व पक्षपात की पट्टी अपनी आँखों व मस्तिष्क से उतार कर विरोध का त्याग कर दें। आप आर्य जनता को यह कहकर मूर्ख नहीं बना सकते कि महर्षि दयानन्द जी को प्रमाण मानने वाले अग्निव्रत जी महर्षि दयानन्द जी से दूर दूर जाकर ब्राह्मण ग्रन्थ, निरुक्त, छन्द यास्क की बात करने लगे। स्वध्यायशील आर्य तो जानते ही हैं कि मैं जिनको प्रमाण मान रहा हूँ उन्हीं को प्रमाण मानकर और उन्हीं के सहारे ही ऋषि वेद को समझ पाये थे और सत्यार्थ प्रकाश में ये सभी ग्रन्थ प्रामाणिक बताये गये हैं। इन पर शंका तो कोई ईसाई, मुसलमान, व नास्तिक मूर्ख ही कर सकता है। कोई पौराणिक विद्वान् भी शंका कभी नहीं कर सकता तब आर्य विद्वान् तो कर ही कैसे सकता है? **हाँ, द्वेष व अहंकार के रोग की कोई औषधि नहीं है।**

सत्यजित् जी! आप कभी मुझसे ही छल–कपट से तो कभी मैत्रीपूर्ण चर्चा से विज्ञान की जानकारी लेते रहे हैं, आज हमें ही विज्ञान सिखाने व मुझ पर व्यंग्य करने का दुस्साहस करने लगे। आप कहते हैं– 'क्या इन शब्द ज्ञानरूप मंत्रों से विद्युत् उत्पन्न कर राष्ट्र–विश्व की बड़ी समस्या का हल मिल सकता है ? ये दो मंत्र हजारों लाखों की संख्या में छपे हुए होंगे, बार–बार बोल भी जाते होंगे, विचारे भी जाते होंगे। नैष्ठिक जी के आश्रम की विद्युत् इन्हीं मंत्रों से मिल रही होगी। नैष्ठिक जी आमंत्रित करें तो देखने की इच्छा है।' (परोपकारी, मार्च प्रथम 2013)

उत्तर :– देखें, कैसी तार्किक सोच है? जब बेचारे को छन्द का स्वरूप ही ज्ञात नहीं तो ऐसा व्यंग्य तो करेंगे ही। हाँ, जब स्वरूप ज्ञात भी हो जाये अर्थात् मेरे उपर्युक्त प्रमाणों से छन्द को सूक्ष्म वायवीय तरंगें (प्राण – vibration) मान भी लें, तब भी इनकी समझ में यह नादानीपूर्ण शंका रहेगी ही। मुझे स्मरण है कि जब मैं मथुरा गुरुकुल में नया–2 गया ही था कि सत्यजित् जी जैसे ही एक कथित वैज्ञानिक आचार्य ने शायद कोई लेख कहीं लिखा अथवा पूज्य आचार्य प्रेमभिक्षु जी के पास व्यंग्य युक्त पत्र लिखा– ''आर्य समाजी लोग कहते हैं कि यज्ञ करने से पर्यावरण शुद्ध होता है। जबकि यज्ञ करने से उलटा वायु में प्रदूषण बढ़ता है। यज्ञ में प्रयुक्त समिधा, घृत, शाकल्य, तीनों ही कार्बनिक पदार्थ हैं और कार्बनिक पदार्थ को जलाने से कार्बन डाई ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड व पानी ही बनते हैं। इससे वायु शुद्ध तो क्या होगी बल्कि भारी प्रदूषण होगा। बिना विज्ञान को समझे लोगों को मूर्ख बनाया जा रहा है।'' उस कथित आचार्य के अक्षरशः ये शब्द थे, ऐसा स्मरण नहीं परन्तु तर्क यही था। सत्यजित् जी बड़ी योग्यता से सम्पन्न एक प्रसिद्ध संस्था के लगभग द्वितीय सर्वेसर्वा हैं, परन्तु उस समय मैं पूर्णतः गुरुकुल का एक नव प्रविष्ट ब्रह्मचारी था। आचार्य जी ने मुझे वह लेख वा पत्र दिया। उसका उत्तर कार्बनिक रसायन के आधार पर देते हुये मैंने लिखा कि हर कार्बनिक पदार्थ एक विशेष ताप व वायुमण्डलीय दाब पर ही कार्बन डाई ऑक्साइड व कार्बनिक मोनोऑक्साड बनाता है अन्यथा उनके अन्य उत्पाद भी बनते हैं। अनेक प्रमाण दिये अन्ततः वे

आचार्य महोदय शान्त हो गये। उन्हीं जैसे तर्क शास्त्री आचार्य के भाई ये सत्यजित् जी हैं। मैं आप से कहूँगा कि यदि आप न जानते हों तो जान लें अथवा भौतिक विज्ञान के 11वीं 12वी कक्षा अथवा उच्च शिक्षा के छात्र से ही जान लें कि सूर्य में प्रकाश व ऊष्मा आदि ऊर्जा की उत्पत्ति केवल हाइड्रोजन से होती है और मैं बता दूँ कि इसके संलयन से सूर्य प्रति सेकिण्ड 4×10^{26} वाट ऊर्जा उत्पन्न कर रहा है। यहाँ 10^{26} का अर्थ आप न समझते हों तो बता दूँ कि 4 अंक के आगे छब्बीस शून्य रखने से जो संख्या आती अर्थात् चालीस करोड़ अरब अरब वाट ऊर्जा एक सेकिण्ड में। अब मैं यह भी कहूँगा कि पृथ्वी पर वायुमण्डल में जल के रूप में पर्याप्त हाइड्रोजन है। स्वयं अकेला हाइड्रोजन भी है, तब आप बतायें इस हाइड्रोजन से ऐसी ऊष्मा उत्पन्न होकर इस पृथ्वी को जलाकर नष्ट क्यों नहीं कर देती? इन श्रीमान् जी को विद्युत् का स्वरूप ही ज्ञात नहीं, तो समझने का प्रयत्न करें कि विद्युत् लगभग सर्वत्र व्याप्त है। मनुष्य कभी विद्युत् का उत्पादन नहीं कर सकता। हम जो विद्युत् उत्पादन की बात करते हैं, वह वस्तुतः विद्युत् धारा उत्पन्न करते हैं। एक और उदाहरण दूँ। आप ना जानते हों, तो जान लें कि शक्कर में कार्बन, हाइड्रोजन, व ऑक्सीजन तीनों पदार्थ होते हैं। इनका यौगिक है, शक्कर, ये तीनों ही पदार्थ वायुमण्डल में सर्वत्र हैं। तब आप की दृष्टि में तो वायुमण्डल से शक्कर बरसनी चाहिये। जल की वर्षा होती है उसके स्थान पर शरबत बरसना चाहिए। यदि ऐसा आप कर सकें तो देश दुनिया न सही कम से कम ऋषि उद्यान को तो मीठा खरीदना नहीं पड़ेगा और इसका विक्रय करके परोपकारणी सभा का कोष भी अमर हो सकता है। **जिस प्रकार सर्वदा हाइड्रोजन से ऊर्जा उत्पन्न नहीं होती, कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन से शक्कर उत्पन्न नहीं होती। वायु से अग्नि व अग्नि से जल व जल से पृथिवी तत्व हर परिस्थिति में उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार छन्दों से सर्वदा ही विद्युत् आदि पदार्थों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। उत्पत्ति का अपना एक सिद्धान्त होता है, उसे जाने बिना ऐसे बचकाने व्यंग्य करने से बुद्धिहीनों में प्रतिष्ठा आप को मिल सकती है अथवा ईर्ष्या–द्वेष–जन्य आपका ज्वर आपके इन निरर्थक तर्कों से कुछ कम हो सकता है परन्तु बुद्धिमानों में इसका कोई मूल्य नहीं।**

आइये अब वेद मंत्र रूपी छन्दों की उत्पत्ति पर पुनः कुछ चर्चा करें– प्रसिद्ध अनुसंधान वेत्ता पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर अपने निरुक्त भाष्य की भूमिका में लिखते हैं– **''आर्य विद्वान् शब्दार्थ सम्बंध को अनादि मानते हैं। प्रति–सृष्टि में ये मूल शब्द ही अन्तरिक्ष आदि में ध्वनित होते हैं। अतः मन्त्र नित्य माने जाते हैं। वाचा विरूप नित्यया, ऋग्वेद ८.७५.६''** पृष्ठ 32। महर्षि ने भी वैदिक शब्दों का आकाश में एकरस भरा होना कहा, जिसे हम उद्धधृत कर चुके हैं। कहिये, **सत्यजित् जी! क्या आप यह भी कहेंगे कि ज्ञान आकाश में भी है तो सबको ज्ञानी हो जाना चहिये।** पं. जी इसी भाष्य के पृष्ठ दो पर लिखते हैं– **''पदार्थ अथवा अर्थ के आदि सृष्टि में बनते समय जो ध्वनि उत्पन्न हुयी, वही शब्द हुआ''** निरुक्त शास्त्र में गायत्री आदि छन्दों के निर्वचनों को बुद्धि पूर्वक पढ़ने एवं विचारने का प्रयास करें। जहॉ तक इन छन्दों का पृथिव्यादि पदार्थों का उपादान होने की बात है तो क्या आप इतना भी नहीं समझते कि पृथिवी का उपादान कारण जल इसका उपादान अग्नि और अग्नि का उपादान वायु और इनके उपादान कारणभूत सूक्ष्म वायु आदि पदार्थ हैं। **प्राण व छन्द तत्व सूक्ष्म वायु हैं, निमित्त कारण परमात्मा तथा उपादान कारण प्रकृति हैं। ये तरंगें ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हैं। इनके साथ प्राण अपान आदि पांच मुख्य प्राण, तथा नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजयादि सूक्ष्म उपप्राण, इनसे भी सूक्ष्म सूत्रात्मा वायु, पुनः अन्य सूक्ष्म तत्व। सब कुछ यहाँ नहीं बताना है। इनका स्वरूप कैसा होता है? इनमें क्या क्या सृजन प्रक्रिया होती है? कितने प्रकार तत्वों का कैसे –2 निर्माण होता है? इन सबकी जानकारी के लिये मेरे ऐतरेय ब्राह्मण के वैज्ञानिक व्याख्यान की प्रतीक्षा करें।** सब कुछ यहाँ नहीं बताऊंगा। इन सभी तत्वों के वैज्ञानिक स्वरूप को समझने के लिये मेरा चिन्तन व साधना अभी चल रही है। गायत्री आदि छन्दों का पृथिव्यादि लोकों से क्या सम्बंध है ? ये जानने हेतु ब्राह्मण ग्रन्थ तो आपकी समझ के बाहर हैं, तो उपनिषद् ही पढ़कर विचारें। छान्दोग्योपनिषत् के चतुर्थ प्रपाठक के सत्रहवें खण्ड में पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्यौ को तपाकर क्रमशः अग्नि, वायु व आदित्य देवता तथा इनको तपाकर ऋग्वेद यजुर्वेद व सामवेद तथा इस त्रयी विद्या अर्थात् वेद को तपाकर भूः, भुवः एवं स्वः इन तीन महाव्याहृतियों की उत्पत्ति का रहस्य कभी सोचा? यदि नहीं, तो सोच कर देखें ?

सत्यजित् जी लेख के इसी भाग में लिखते हैं–

''नै. अग्निव्रत जी के अनुसार छन्द (कम्पन) = प्राण =वेद सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड में व्याप्त हैं,व ऋषियों ने उसे ईश्वर की कृपा से ग्रहण किया। ईश्वर की कृपा से नैष्ठिक जी का क्या तात्पर्य है, ईश्वर ने इसे

ऋषियों को दिया या ईश्वर ने कृपा करके उन्हें ऐसी बुद्धि दी कि वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त वेद को ग्रहण कर पायें? यदि ईश्वर ने ऐसे (छन्द =प्राण) वेद को दिया तो यहाँ देने का क्या तात्पर्य है? वे जिस प्रकार की व्याप्तता वेद (छन्द=प्राण) की मान रहे हैं, उस रूप में व्याप्त किया, इसे देना कहें तो यह तो सब मनुष्यों के लिये समान हुआ, फिर चार ऋषियों को ही वेद देने की बात असंगत हो जायेगी। यदि इन चार को ही दिया, तो देने का क्या तात्पर्य है, जब वे पहले से ही सर्वत्र व्याप्त हैं। यदि उन्हें ऐसी बुद्धि दी, जिससे वे व्याप्त वेद (छन्द=प्राण) को स्वयं ग्रहण कर सकें तो महर्षि की मान्यता से भिन्न होगा। वेदोत्पत्ति की एक प्रक्रिया महर्षि ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका व सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में दी है, वहाँ जो प्रक्रिया दी है उसमें भिन्न प्रक्रिया है और नैष्ठिक जी की वैज्ञानिक प्रक्रिया भिन्न है। यह नैष्ठिक जी की ऊहा है, किन्तु यह महर्षि के अभिप्राय से भिन्न रूप में बन गयी है। जब इस वैज्ञानिकता का प्रभाव प्रारम्भ में ही महर्षि के विपरीत चला गया हो तो आगे और क्या–2 हो सकता है, इसकी परिकल्पना सहज ही की जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल में ही भूल हो चुकी है। वैसे अग्निव्रत जी ने अभी अपने पत्ते पूरे खोले नहीं हैं। ....''

(3) वेदज्ञान के आविर्भाव की वैज्ञानिक प्रक्रिया

उत्तर :– मूल में भूल तो सत्यजित् जी! अवश्य ही हो रही है, होती रही है परन्तु मेरे में नहीं बल्कि आप तथा आपकी परम्परा में है। **वक्ता वा लेखक के आशय को बिना समझे केवल शब्दों में रमण करते रहना उसके अर्थ को कुछ–२ ही जानना और भाव तो बिल्कुल भी नहीं जानना आप एवं आपके मित्रों व गुरुओं का दुर्भाग्य रहा है। वाचकों पर लड़ाई होती रही हैं परन्तु वाचक के स्वरूप को समझना आप लोगों के सामर्थ्य के बाहर की बात ही रही है।** 'वायुः' शब्द कैसे बना, आप व्याकरण से यह अवश्य बता देंगे परन्तु यह क्या बतला रहा है, इसे जानने के लिये प्रतिभा ही चाहिए। यह न किसी पुस्तक से सीखा जायेगा और न कोई साधारण गुरु बतायेगा। **जब आप प्राण, गायत्री आदि छन्दों के स्वरूप की वर्णमाला भी नहीं जानते तो वेद को कैसे समझेंगे?** इसी प्रकार महर्षि – महर्षि की रट लगाने वाले महर्षि के आशय को ही नहीं जानते, तब अन्य लोगों को कैसे समझा सकते हैं? महर्षि किस कारण अपना मत विस्तार से न रख पाये, यह लेख के अन्त मे बताऊँगा। हाँ, हमने गायत्री आदि छन्द जिनका समूह ही वेद है, का स्वरूप क्या है, यह बता दिया। यह भी स्पष्ट किया कि सृष्टि प्रक्रिया के प्राथमिक चरण से ही इनकी उत्पत्ति होती जाती है। इन्हीं के विकृत होने से आगे की सृष्टि प्रक्रिया चलती है। अब हम इस विषय पर आते हैं, जिस पर महर्षि ने स्पष्टता अधिक की है। वह है, चार ऋषियों के आत्मा में वेद ज्ञान का प्रकाश, उसका प्रकार यह है–

जैसा कि हम कह चुके हैं तथा महर्षि जी भी इतना स्पष्ट कर गये हैं कि वैदिक शब्द नित्य हैं तथा आकाश में एकरस भरे हैं। अब सृष्टि की प्रथम पीढ़ी के अग्नि आदि चार ऋषियों की समाधिस्थ विशेषकर सविचार सम्प्रज्ञात अवस्था में जो छान्दस तरंगें इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त थीं, वे परमात्मा द्वारा ऋषियों के अन्तः करण में भी प्राप्त हुईं। जैसे इस समय रेडियो तरंगों के रूप में विभिन्न संदेश इस आकाश में विद्यमान हैं, परन्तु कोई व्यक्ति मोबाइल, फोन, टी.वी., रेडियो, नेट आदि के माध्यम से ही ग्रहण कर सकता है। मानवोत्पत्ति के समय अग्नि आदि चार महर्षियों के पास कोई दिव्य टैक्नोलॉजी नहीं थी कि जिससे उन्होंने सर्वत्र व्याप्त उन छन्दों को प्राप्त किया। जिस प्रकार आकाशस्थ रेडियो तरंगों के व्याप्त होते हुए भी हर व्यक्ति उन्हें प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि विशेष मोबाइल आदि उपकरण का धारक ही विशेष तरंगों को प्राप्त कर सकता है, इससे उन तरंगों की आकाश में विद्यमानता वा व्याप्तता में बाधा नहीं आती, उसी प्रकार पूर्व में केवल उन चार ऋषियों के आत्मा में ब्रह्माण्डव्यापी छन्दों का प्रकाश होने से अथवा अन्य किसी के आत्मा में उनका प्रकाश न हो पाने से उस छन्दों की सर्वत्र व्याप्तता में बाधा नहीं आती। जब वे तरंगें ऋषियों को प्राप्त हुयीं, तब तरंगों के प्राप्त होने पर अगली प्रक्रिया होती है, उसका अर्थ जानना। जैसे किसी रेडियो तरंग के तीन प्रभाव होते हैं। १. इनके द्वारा जड़ व चेतन पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है यथा– रेडियो तरंगों द्वारा मास्तिष्क केंसर की आशंका, पक्षियों पर दुष्प्रभाव आदि उसी प्रकार जड़ जगत् पर भी रेडियो तरंगों प्रभाव होता ही है। रेडियो तरंगें विद्युत् चुम्बकीय तरंगों का सबसे दुर्बल रूप है। जब इन्हें मोबाइल, टी. वी., आदि किसी यन्त्र के द्वारा ध्वनि तंरगों में बदला जाता है, तब उस ध्वनि तरंग के भी प्रभाव होते हैं। केवल शब्द ऊर्जा का भी जड़ व चेतन पर प्रभाव होता है। यदि व्यक्ति बहरा है, तब भी उसके शरीर पर भी ध्वनि का कुछ न कुछ प्रभाव होता ही है। यदि बहरा नहीं है, तो उसके शब्द, कान

पुनः मस्तिष्क में जाकर कुछ अन्य प्रभाव करते हैं। जब व्यक्ति उन शब्दों के अर्थ व भाव को जानता है, तो उस पर अतिरिक्त प्रभाव व फल होता है और यही अन्तिम फल है। इस प्रकार एक ही रेडियो तरंग के पृथक् पृथक् स्तर पर पृथक्–२ प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। उसी प्रकार उन छन्दों के उन ऋषियों के आत्मा में प्रकाश होने का अर्थ उन्होंने उन दिव्य ध्वनियों को सुना और सुनकर के परमात्मा के सहाय से उनके अर्थों को भी जाना। उनके पास उन ध्वनियों (छन्दों) को जानने का और कोई उपाय नहीं था, केवल ईश्वर ही का आश्रय था। **वे छन्द ब्रह्माण्ड में भी परमात्मा ने उत्पन्न किये और उन ऋषियों के बाहर भी ब्रह्माण्ड पर जड़ होने से उनका ध्वन्यात्मक व वायव्य – आग्नेय प्रभाव ही रहा, जबकि ऋषियों पर उनका अर्थ व भाव का प्रभाव हुआ।** उस अर्थ व भाव को उन्होंने आगे ब्रह्माजी को प्रदान किया अर्थात् वेदोपदेश किया और ब्रह्माजी से विद्या परम्परा आगे चल पड़ी। अब बतायें, यह प्रक्रिया महर्षि के आशय के विपरीत कैसे है? **महर्षि के शब्दों संकेतों के भाव को तब ही समझा जा सकेगा, जब आत्मा निर्मल व निष्पक्ष होगा, साथ ही एक विशेष प्रतिभा भी होगी अन्यथा ऐसे ही विवाद खड़ा करते रहोगे।**

शोक है कि आपने महर्षि के उन शब्दों पर कुछ भी नहीं विचारा है कि वैदिक शब्द अर्थात् छन्द आकाश में एक रस भरे हैं, अतः नित्य हैं। क्या ऋषियों को ज्ञान देने से पूर्व ये शब्द आकाश में व्याप्त नहीं हो गये थे? ज्ञान तो परमात्मा में था परन्तु शब्द क्या उन ऋषियों से पूर्व नहीं थे? यदि नहीं थे, तो क्या उन ऋषियों ने वैदिक शब्दों को आकाश में भर दिया और वह भी ऐसा भर दिया कि एकरस व्याप्त हो गये? क्या किसी का भी यह सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण आकाश को शब्दों से एकरस भर दे, यदि नहीं तो परमेश्वर ने ऋषियों के अतिरिक्त सम्पूर्ण आकाश में इन छन्दों को भरा वा नहीं? यदि हाँ, तो मेरी वेदोत्पत्ति प्रक्रिया महर्षि से विपरीत कैसे हो गयी? **बन्धुवर! आपकी समझ में ये अधूरे पत्ते ही नहीं आये, तो पूरे पत्ते समझाने कौन आयेगा?**

सत्यजित् जी का कथन है–

''नैष्ठिक अग्निव्रत जी ने एक और नयी बात लिखी है 'वेद मंत्र का सृष्टि प्रक्रिया पर प्रभाव होता है। क्या यह भी महर्षि अनुकूल है या नई वैज्ञानिक खोज है।''

उत्तर :– यदि आप अब छन्द का अर्थ समझ गये हों, तो आपका निष्पक्ष आत्मा स्वयं कह देगा कि हाँ, होता है। जब छन्द बलकारी है, प्रकाशरूप विविध रंगों वाले होते हैं, विभिन्न पदार्थों के उपादान होते हैं, तब उनका सृष्टि प्रक्रिया पर प्रभाव क्यों नहीं होगा? जब रेडियो तरंगों, ध्वनि तरंगों, प्रकाश, ऊष्मादि तरंगों, प्राण एवं वायु आदि पदार्थों का सृष्टि प्रक्रिया पर प्रभाव होता है और न केवल प्रभाव होता है अपितु इन्हीं से यह सृष्टि बनी है, तब वेद मंत्रों, छन्दों प्राणों का प्रभाव क्यों नहीं होगा?

सत्यजित् जी पुनः लिखते हैं–

''नैष्ठिक जी वेद मंत्रों के ऊपर उल्लेखित विभिन्न ऋषियों को दो प्रकार का मान रहे हैं। एक मानव ऋषि, दूसरे सूक्ष्म प्राण ऋषि। वेद मंत्रों पर लिखे ऋषि को महर्षि दयानन्द मानव ऋषि ही मानते हैं। महर्षि दयानन्द के द्वारा उन्हें सूक्ष्म प्राण के रूप में कहीं कहा गया नहीं मिलता। उन्हें सूक्ष्म प्राण रूप मानने की वैज्ञानिक दृष्टि महर्षि के अनुकूल कैसे है यह नैष्ठिक जी ही बता पायेंगे .... इन ऋषि नामों में सृष्टि के सूक्ष्म प्राणों को लाकर वैज्ञानिक बातों को वेद में स्वच्छन्दता से कल्पित करना व मान लेना कि वेद का वैज्ञानिक अर्थ कर दिया है, मात्र आत्ममुग्धता है। कोई भी इस विषय का ज्ञाता इसे स्वीकार नहीं कर सकता। कम से कम इसे महर्षि के मन्तव्य के अनुकूल तो नहीं कहा जा सकता। ....''

(4) वैदिक ऋषि–तत्व विज्ञान

उत्तर :– जब आप छन्द को समझने में नितान्त भ्रमित हैं तब ऋषि तत्व को भी कैसे समझ सकते हैं? ऐतिहासिक मानव ऋषि की महर्षि की मान्यता तो मेरी भी है, जो मेरे लेख में थी ही, परन्तु प्राणरूप ऋषि की मान्यता पर आपको आपत्ति है। जरा, इस पर विचारें कि कई स्थानों पर जो ऋषि मंत्र के ऊपर उल्लिखित हैं, वही ऋषि मंत्र में भी हैं। तब क्या मंत्र में उल्लिखित ऋषि ऐतिहासिक हैं? यदि हाँ, तो वेद में मानव इतिहास सिद्ध हुआ, जो महर्षि के मन्तव्य के प्रतिकूल है और आप भी नहीं मानेंगे। तब मंत्र में उल्लिखित ऋषि ऐतिहासिक न होकर कोई पदार्थ विशेष हुआ, भले ही वह कुछ भी क्यों न हो। इस कारण उसका अर्थ यौगिक ही होना चाहिए। ऋग्वेद १.२४ सूक्त का एक ऋषि शुनःशेपः है तथा ऋग्वेद १.२४.१२ व १३ मंत्रों में भी 'शुनःशेप' शब्द विद्यमान भी है, जिसका अर्थ महर्षि ने 'शुनो विज्ञानवत् इव शेपो विद्यास्पर्शो यस्य सः' अर्थात् अत्यन्त ज्ञान वाला विद्वान् किया है। इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा

सकते हैं। तब इतना तो स्पष्ट है कि मन्त्रों के ऊपर लिखे ऋषिवाची शब्द जहाँ मंत्र के प्रथम साक्षात् कर्ता का रूढ़ नाम है, वहीं इनका यौगिक अर्थ भी होता है, जो ऐतिहासिक ऋषि से पृथक् है। तब दो अर्थ सिद्ध हो ही गये। अब क्योंकि इस सूक्त का महर्षि ने आधिदैविक अर्थ नहीं किया, इस कारण शुनःशेप का अर्थ आधिदैविक (वैज्ञानिक) नहीं किया। यदि आधिदैविक अर्थ करें तो ऋषि का वैज्ञानिक अर्थ भी होगा, जो मैंने ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप आख्यान में किया है। तब मेरे मत को ऋषि के विरुद्ध कैसे मान लिया? मैंने अपने लेख में लिखा था कि ऋषि का वेदार्थ में कोई उपयोग नहीं है और महर्षि ने वेदार्थ प्रकरण में ही ऋषि को परिभाषित किया है, तब वे सृष्टि प्रक्रिया के अंग ऋषि अर्थात् सूक्ष्म प्राण अथवा किसी यौगिक अर्थ का संकेत भी क्यों करेंगे? इससे वेदार्थ प्रकरण के अध्येताओं को उसी प्रकार भ्रम हो सकता है जिस प्रकार आपको मेरे लेख से हो गया है। ऋषि वा ऋषिवाची शब्दों का यौगिक अर्थ अपने भाष्य में उन्होंने किया भी है और अनेकत्र ऋषि शब्द का अर्थ विभिन्न प्रकार के प्राण किया ही है। भरद्वाज, जमदग्नि, वामदेव, अत्रि, शुनःशेप, वसिष्ठ, गोतम आदि अनेक ऋषियों के यौगिक अर्थ ऋषि ने किये हैं और इनमें कई अर्थ आधिदैविक भी हैं, तो अनेकत्र केवल ऋषि शब्द का आधिदैविक अर्थ किया, तब भी बुद्धि में नहीं बैठ सके, तो महर्षि का क्या दोष है? क्या आप मनुस्मृति के इस प्रसिद्ध श्लोक 'सर्वेषामेव नामानि कर्माणि च पृथक्–2 ....' को भी नहीं समझते, जो पुकार–2 कर आप जैसों को जगा रहा है कि सृष्टि में सभी मनुष्यों ने सभी नाम वेदों में से देख कर रखे अर्थात् जो वैदिक पद यौगिक थे उन्हें रूढ़ रूप में अपने नाम के रूप में ग्रहण कर लिया। इसी को दृष्टिगत रखकर पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर अपने निरुक्त भाष्य १.४ में पृष्ठ 19–20 पर लिखते हैं– ''**घोर पुत्र प्रगाथ ऋषि की यह ऋचा है। ऋग्वेद ८.६२.११ का प्रसंग, अंगिरा के आठ पुत्रों में से घोर एक है। अंगिरा आग्नेय परमाणुओं का योग विशेष है। उसका पुत्र घोर और तत्पुत्र प्रगाथ भी आग्नेय परमाणुओं के योग के उत्तरोत्तर रूप हैं। उस प्रगाथ रूप और इन्द्र के संयोग से जो साफल्य सृष्टि निर्माण समय हुआ, उसी का कथन इस ऋचा में है। यह प्रगाथ भी मध्यम स्थानी है। लोक में भी अंगिराः, घोर और प्रगाथ नाम वेद से लेकर (वेदशब्देभ्य एवादौ मनुः १.२१) ऋषि परिवार में रखे गये।**'' इस प्रकार ये यौगिक अर्थ वाले ऋषि प्राण ही उस–2 छन्द (मंत्र) के उपादान कारण होते हैं। आप यह मानते हैं कि महर्षि ने जो बात जहाँ जितनी बतायी, हमें उतनी ही ग्राह्य है। यदि अन्यत्र किसी स्थान पर उसी पद के दूसरे अनेक अर्थ हों, तो भी उनसे इसका कोई सम्बंध नहीं, यह स्थूल बुद्धि का ही परिचायक है। महर्षि ने वेद भाष्य में कहाँ–2 से कैसे–2 प्रमाण व अर्थों को ग्रहण किया है? ऋग्वेद १.१.१ में ही कितने प्रमाण दिये, कहाँ–2 से कैसे–2 अर्थ किये? क्या आप कभी सोच सकेंगे? आपके अनुसार तो यदि 'अग्नि' पद हजार बार आया हो तो उसके हजार अर्थ ही होने चाहिए क्योंकि कहीं का अर्थ अन्यत्र लग ही नहीं सकता। तब तो किसी भी पद का अर्थ कोई नहीं कर पायेगा क्योंकि उसका अर्थ किसी कोष में देखें, तो यह देखना होगा कि वह अर्थ कहाँ से लिया? किस प्रसंग से लिया और जहाँ से लिया, वहाँ भी वही अर्थ क्यों व किसने किया? यह कौन बतायेगा? सारे शब्दकोष व्यर्थ हो जायेंगे। **हाँ, अर्थ में मनमानी तो नहीं हो सकती परन्तु किसी भी अर्थ से मंत्र के पूर्वापर प्रकरण में संगति में कोई बाधा नहीं है बल्कि और भी सुन्दर संगति लगती है, तो वह अर्थ मुझे ग्राह्य है, अन्यथा नहीं। यही अर्थ करने का एक कसौटी है।** ऋषि नामों को अर्थ में प्रयोग करते हुए प्रख्यात आर्य विद्वान् पं. शिवशंकर जी काव्यतीर्थ ने इन्द्र व इन्द्राणी के संवाद के रूप में इन मंत्रों का ग्रहण किया है। यदि ऋषि केवल ऐतिहासिक ही माने जायें तो उनके संवाद के रूप में मंत्रों की उत्पत्ति होना सिद्ध होगा फिर वेद अपौरुषेय न होकर पौरुषेय हो जायेंगे। शायद पं. जी को यह दृष्टि आचार्य सायण से मिली है। आचार्य सायण भी ऐसा ही कह रहे हैं। यदि वे ऋषि यौगिक अर्थ में हैं, तब मंत्र के ऊपर उल्लिखित ऋषि पं. जी की दृष्टि में दो प्रकार के सिद्ध हुए परन्तु आप इस पर मौन साधेंगे। पं. जी ने इस सूक्त का भाष्य **'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय'** नामक ग्रन्थ में किया है। उनका भाष्य अश्लील नहीं है परन्तु मेरी दृष्टि में सुन्दर होते हुए भी सुसंगत नहीं है, उसी की नकल करने का प्रयास 'दयानन्द संस्थान' के प्रकाशन में है। इस प्रकार ऋषि के स्वरूप को यथार्थ में न समझने से अनेक भ्रान्तियां व समस्यायें जन्म ले सकती हैं।

अब सत्यजित् जी का कथन है–

''मंत्र भी प्राण व ऋषि भी प्राण, इस प्रकार प्राण से प्राण की उत्पत्ति बतायी गई है। इन्होंने इन मंत्रों की उत्पत्ति ऋषि प्राण से बताई है। क्या महर्षि ने कहीं प्राण से मंत्रों की उत्पत्ति बताई है? कहीं मंत्रों के ऋषि से मंत्र की उत्पत्ति बतायी है? यदि नहीं तो ऐसा कथन महर्षि के अनुकूल कैसे हो सकता है? नै.

अग्निव्रत जी ने यहाँ ऋक् का अर्थ प्राण किया है। क्या वे बता पायेंगे कि महर्षि ने ऋक् का अर्थ प्राण कहाँ किया है? शतपथ ब्राह्मण ७.५.२.१२ में जो 'प्राणो वा ऋक्' कहा है, उसके आगे इसका कारण बताया 'प्राणेन हि अर्चति'। प्राण के द्वारा अर्चना करने से प्राण को ऋक् कहा जाता है। स्तुति करने वाला तो प्राणी ही होगा। अब जो सूर्य लोक में प्राण है, उस प्राण के द्वारा अर्चना कैसे की जा सकती है?''

उत्तर :– वाह जी वाह! ऐसी तर्क शक्ति भी आपकी विलक्षण योग साधना की देन है? क्या प्राण से प्राण की उत्पत्ति नहीं हो सकती? क्या कारण वायु आदि कारण तत्वों से कार्य वायु आदि भूतों की उत्पत्ति महर्षि ने अपने वेद भाष्य में नहीं कही? क्या कारण विद्युत् से कार्य विद्युत् की उत्पत्ति महर्षि ने नहीं कही? यदि आपने महर्षि कृत वेद भाष्यों को ध्यान से नहीं देखा, तो पहले अच्छी प्रकार अध्ययन कर लिया करें। व्यर्थ ईर्ष्या, द्वेष वा अहंकारवश न उबला करें। **क्या सूक्ष्म से स्थूल का बनना आपकी दार्शनिकता को स्वीकार नहीं है? यदि नहीं है, तो फिर आप फिर से किसी योग्य गुरु से अध्ययन करना आरम्भ कर दें, तो कभी न कभी आपको मेरी बात समझ में आ ही जायेगी। भला सूक्ष्म से स्थूल पदार्थ नहीं बनेगा, तो सृष्टि कैसे बनेगी? कोई कहे कि कुण्डल भी सोना और सोना स्वयं भी सोना। भला सोने से सोना कैसे बनेगा? यदि सोने से सोना नहीं बनेगा तो क्या स्वर्णकार लोहे से सोना बनायेगा?** यदि ऐसा ही आपकी प्रज्ञा कहती है, तो अति उत्तम है। पर्याप्त धन सभा के पास हो जायेगा। इतनी सी बात बताने के लिए मेरा क्यों समय नष्ट करते हो? **महर्षि ने क्या बतलाया, क्या नहीं, यह आपकी समझ में आ ही कैसे सकता है? कदाचित् मेरे इस लेख को पढ़कर आ जाये, तो अच्छा है।** 'ऋक्' का अर्थ प्राण कैसे किया? आपको शतपथ का प्रमाण मान्य नहीं जो महर्षि दयानन्द जी का प्रमाण पूछते हो? **'प्राणेन अर्चति' इस शतपथ के वचन का अर्थ केवल व्याकरण नहीं समझा पायेगा। इसके लिए एक विशेष दृष्टि चाहिए, जो दुर्भाग्य से आप लोगों के पास किञ्चिदपि नहीं है।** 'अर्च' धातु जहाँ पूजा अर्थ में है, वही वेद में इसका अर्थ चमकना, प्रकाशित होना भी होता है। इसके लिए आप पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक का 'संस्कृत धातु कोष' देख लेते, तो अच्छा था। आपको महर्षि दयानन्द जी के प्रमाण की हठ इसलिए है, क्योंकि आप स्वयं को एक ऋषिभक्त होने का दिखावा कर रहे हैं। चलें, यही सही इसी धातु से निष्पन्न 'अर्चयः' शब्द का अर्थ ऋग्वेद ५.२५.८ में महर्षि ने 'किरणाः' किया है। यदि आप कहें कि कहीं का अर्थ कहीं फिट करना गलत है तो इसका उत्तर मैं दे चुका हूँ। आप कहेंगे शतपथ के उस प्रसंग से जिससे मैंने 'ऋक्' का अर्थ 'प्राण' किया है। महर्षि ने यजु. १३.३९ जिसका संदर्भ शतपथ में है, में 'ऋचे' का अर्थ 'स्तुतये' किया है, जिसका अर्थ स्तुति करना ही होता है, तब 'अर्चति' का अर्थ 'पूजा करता है', होगा न कि 'प्रकाशित होता है'। यह भी आपकी अज्ञानता व कूपमण्डूपता है। महर्षि ने इस मंत्र का आधिदैविक अर्थ ही नहीं किया। यदि वे आधिदैविक अर्थ करते अर्थात् उन्हें पर्याप्त समय वेदभाष्य के लिए मिलता, तब इसका अर्थ प्रकाशित करना ही नहीं अपितु 'स्तुति' शब्द का अर्थ भी 'प्रकाश' करते। देखिये, ऋग्वेद १.१२.७ में 'स्तुति' पद का अर्थ आधिदैविक पक्ष में 'प्रकाशित कर' भी किया है। अध्यात्म अर्थ में आध्यात्मिक प्रकाशन अर्थ ग्रहण किया है। इसी धातु से निष्पन्न 'स्तोम' शब्द का अर्थ महर्षि अपने यजु. २२.१५ भाष्य में 'इन्धनसमूह' करते हैं। 'स्तूप' का अर्थ 'किरण समूह' करते हैं (देखें, ऋग्वेद १.२४.७) क्या अब भी समझ में नहीं आयेगा कि मैंने यहाँ ऋक् का अर्थ प्राण क्यों किया? और क्यों 'अर्चति' का अर्थ यहाँ 'प्रकाश करना' ही है? **यदि अब भी आप नहीं समझ पाये, तो आपको ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते, फिर मेरी सामर्थ्य ही क्या है?**

आगे सत्यजित् जी लिखते हैं–

''नैष्ठिक जी ने यह भी लिखा कि इन मंत्रों में सूर्य का ही वर्णन है। यदि नैष्ठिक जी के अनुसार यह ठीक भी हो, तो फिर इन मंत्रों आधिभौतिक व आध्यात्मिक करते हुए, वे इन मंत्रों में राजा, विद्वान्, पुरुष, योगी का वर्णन कैसे कर रहे हैं? कम से कम अपने–2 वचन के अनुकूल तो बने रहते, महर्षि दयानन्द के अनुकूल नहीं बने रह सकते थे, तो कोई बात नहीं .... वेद भाष्य की इस वैज्ञानिक शैली में सब सम्भव है, चमत्कार का नाम ही तो विज्ञान है। .....''

उत्तर :– वाह सत्यजित् जी! आपने तो अपनी प्रतिभा का चमत्कार ही कर दिया। आपने वेद की यौगिक शैली पर व्यंग्य करके बता दिया कि आप रूढ़ार्थ के गर्त से कभी नहीं निकल पायेंगे। मेरे लिखने का तात्पर्य था कि सूर्य के बनते समय एवं इस समय भी सूर्य के केन्द्रीय भाग के क्षेत्र में ये छन्द अमुक–2 भूमिका निभाते हैं और उसी भूमिका वा प्रक्रिया का वर्णन इन मंत्रों में है। जब सभी मंत्रों में उस–2 समय की आधिदैविक प्रक्रिया का वर्णन है और उनके अर्थ के रूप में मानव ऋषि उस–2 प्रक्रिया के ज्ञान कराने

वाले आधिदैविक अर्थों का भी ग्रहण करते हैं। साथ–2 मानव व्यवहार व परमार्थ हेतु आधिभौतिक व आध्यात्मिक अर्थ भी परमात्मा उन्हें जनाता है, तब इनमें आपको कौन सा असम्भव चमत्कार दिखाई देने लगा? एक अज्ञानी तो विज्ञान के छोटे–2 कार्य को चमत्कार ही तो मानेगा, तो उसके लिए चमत्कार ही सही, परन्तु वैज्ञानिक व इंजीनियर के लिए वह एक सामान्य बात है। वही दशा आपकी है।

यहाँ सत्यजित् जी का परोपकारी मार्च (प्रथम) लेख का उत्तर समाप्त होता है। अब इन्होंने मार्च (द्वितीय) अंक में मेरे प्रमाणों की परीक्षा करने का प्रयास किया है। हम उस प्रयास का उत्तर देने का प्रयास करेंगे। वे लिखते हैं–

''नैष्ठिक अग्निव्रत जी ने 'इन्द्र' शब्द के तीन अर्थ उद्धृत किये हैं, काल विभागकर्तासूर्यलोकः (भाष्य ऋग्वेद १.१५.१) विद्युदाख्यो भौतिकाग्निः (भाष्य ऋग्वेद १.१६.३) महाबलवन्तो वायुः (भाष्य ऋग्वेद १.७.१) ये तीनों अर्थ यद्यपि महर्षि के भाष्य में हैं, पर ये तीनों भिन्न–2 मंत्रों में भिन्न–2 संदर्भों में किये गये हैं। नई वैज्ञानिक शैली में इन्हें एक साथ मिला दिया है। .... क्या महर्षि ने कहीं तीनों को मिला कर लिखा है? देखिये, मिलाने में भी हेर फेर कर दी। ऋग्वेद १.१६.३ में 'इन्द्र' का भाष्य करते हुए जिस विद्युत् अग्नि का कथन है, वह मानव के उपयोग वाली पृथिवी वाली विद्युत् है, इसे ले गये सूर्य लोक में। महर्षि ने स्वयं को विद्युत् कहा है, ये इसे वायु का विशेषण बता रहे हैं– वैद्युत वायु ...... ऋग्वेद १.७.१ में 'इन्द्रं' शब्द है व महर्षि ने उसका अर्थ 'महाबलवन्तं वायुम्' किया है। नैष्ठिक जी ने लिखा, 'महाबलवन्तो वायुः' यद्यपि शब्द वे ही हैं, पर विभक्ति परिवर्तन कर दिया गया। इस मंत्र में 'इन्द्रः' शब्द नहीं है, 'इन्द्रम्' है। प्रमाण देते समय नैष्ठिक जी ने न तो वेद के शब्द को यथावत् रखा, न महर्षि के वचन को, दोनों जगह हेर फेर कर दी। यद्यपि तात्पर्य ठीक है। ...... महर्षि का नाम लेकर मिश्रण को प्रमाणित करना, उसे महर्षि के अनुकूल कहना, उचित नहीं है।'' परोपकारी मार्च (द्वितीय)

(5) मेरे प्रमाणों की प्रामाणिकता (विभक्ति व वचन)

उत्तर :– प्रथम तो 'महाबलवन्तो' के स्थान पर 'महाबलवान्' होना चाहिए। मेरे भाष्य में यह भूल हो गयी थी, जो सत्यार्थ सौरभ में शुद्ध करके छापी गयी थी, जो सत्यजित् जी को दिखायी नहीं दी। **''तात्पर्य ठीक है परन्तु ऐसा करना उचित नहीं,'' ये वाक्य दर्शाते हैं कि सत्यजित् जी को मेरे प्रमाणों में गलत नहीं मिला पुनरपि पाठकों के समक्ष अपना पाण्डित्य दर्शाकर मेरे भाष्य को अनुचित बताना ही लक्ष्य है।** भिन्न–2 सन्दर्भों में विद्यमान अर्थ को कैसे व किस परिस्थिति में हम अन्यत्र ग्रहण कर सकते हैं, यह मैं इसी लेख में दर्शा चुका हूँ, अतः पिष्टपेषण उचित नहीं। रही बात दो को मिलाकर एक अर्थ बनाने की, जिसे मिश्रण बताकर आप व्यंग्य कर रहे हैं। वस्तुतः यह आपकी अज्ञानता का परिचायक है। महर्षि के प्रयोगों का आपने अध्ययन व विचार किया ही नहीं है और यदि किया भी है तो आपकी समझ में आये नहीं हैं। महर्षि किसी संज्ञावाची शब्द का कहीं विशेषणवाची तो कहीं विशेष्यवाची शब्दों के रूप में अर्थ करते हैं और कहीं–2 दोनों को संयुक्त कर देते हैं। 'अश्वं' शब्द का अर्थ यजुर्वेद २५.३७ में 'वेगवन्तम्' करते हैं, जो किसी का विशेषण है। इसी वेद के २२.४ में 'महान्तम्' करते हैं, यह भी विशेषण ही है। कहीं केवल विशेष्य के रूप में करते हैं जैसे ऋ. ६.४६.२ में 'तुरंगम्' ऋ. १.११७.४ विद्युतम् आदि तो अनेकत्र दोनों को मिलाकर अर्थ करते हैं। जैसे– 'व्यापनशीलं विद्युतम्' ऋ. १.११८.६, अध्वव्यापिनमग्निम् १.११६.६ आदि। अब महर्षि तो हैं नहीं, तब आप किससे पूछेंगे कि यह मिश्रण का गोरखधंधा क्यों कर दिया? आप कहेंगे कि महर्षि ने किया वही उचित है और उनका अनुकरण करके अग्निव्रत यदि कुछ करता है, तो उपहास का पात्र है, यह आपकी मनोवृत्ति का ही दोष है। इस पर विशेष टिप्पणी इस लेख के अन्त में करूंगा। 'इन्द्रम' के अर्थ को देखकर 'इन्द्रः' अर्थ निकालना भी आपको चुभ रहा है। यदि तात्पर्य ठीक है, तो कागज काले क्यों कर रहे हैं? आपके पास कोई और काम नहीं है, क्या? यदि कहीं 'बालकौ' का अर्थ 'दो बालक' दिया हो और उससे कोई 'बालकः' का अर्थ 'एक बालक' ग्रहण करे, तो क्या वह अपराध कर रहा है? अंग्रेजी सीखने वाला 'Boy' शब्द का अर्थ 'लड़का' देखकर **'Boys'** का अर्थ 'एक से अधिक लड़के' ग्रहण करे तो आप तो कहेंगे कि यह तो वचन का परिवर्तन कर दिया। बड़ा भारी अनर्थ हो गया। यदि कोई 'रामेण' का अर्थ 'राम के द्वारा देखकर' 'रामः' का अर्थ 'राम अथवा राम ने' कर दे, तो आप उसे कहेंगे कि इसने विभक्ति बदल दी। **तब तो संसार के सभी कोष व्यर्थ हैं, जिनमें प्रायः प्रथमा विभक्ति व एकवचन के ही अर्थ दिये होते हैं। तब अन्य विभक्ति व वचनों के अर्थ देखने संसार भर के छात्र आपके पास आयेंगे? और आप फिर यह**

देखेंगे कि महर्षि ने इसके क्या–2 अर्थ दिये हैं? धन्य हैं, आचार्य! ऐसा कैसा अध्यापन चलता है, ऋषि उद्यान के गुरुकुल में? ध्यान रहे कि प्रमाण सामान्य जनता के लिए नहीं होते बल्कि विद्वानों व विशेष स्वाध्यायशील पाठकों के लिए संकेत रूप में होते हैं। लेख में तो और भी सांकेतिक होते हैं। उनको यदि कोई विद्वान् न समझे अथवा द्वेष बुद्धि के कारण पाठकों को भ्रमित करने हेतु लेख लिखे, तो उसे कौन रोक सकता है? जब वह अन्तरात्मा की आवाज को ही नहीं सुनता, तो किसी और की क्या सुनेगा? जो व्यंग्य किया कि पृथिवी की विद्युत् को सूर्य लोक में ले गये। उस विषय में इतना ही कथन है कि ब्रह्माण्ड भर की विद्युत् मूलतः एक ही है। उसके तीन विभाग जो शास्त्रों में दिखायी देते हैं, उसकी सूक्ष्मता समझने के लिए अभी आपको बहुत साधना–तप करना होगा, वैसे यह आपका विषय भी नहीं है।

सत्यजित् जी का आगे कथन है–

''नैष्ठिक जी ने दूसरा शब्द लिया 'इन्द्राणी', यह तो इन मंत्रों का देवता = प्रतिपाद्य विषय भी नहीं है। ऐसे में 'इन्द्राणी' शब्द का महर्षिकृत अर्थ यहाँ देना अप्रासंगिक होने से अप्रामाणिक है, व्यर्थ है। इन्द्राणी के अर्थ को फिर वेद मंत्रों के अर्थ में प्रविष्ट करा देना, मनमानी है, अप्रामाणिक है। दोनों वेद मंत्रों में 'इन्द्राणी' शब्द नहीं आया है। यदि यहाँ इन्द्राणी का अर्थ लेना तो उसका कोई आधार होना चाहिए, प्रमाण होना चाए।'' (लेख– वही)

(6) ऋषि–अर्थ की आवश्यकता

उत्तर :– कुछ पाठकों ने यदि मेरा भाष्य पढ़ा हो तो उसमें देखा होगा कि मैंने वेद मंत्रों के भाष्य में कहीं भी इन्द्राणी का अर्थ ग्रहण ही नहीं किया है परन्तु ये सत्यजित् जी मिथ्या भ्रान्ति पाठकों में भर रहे हैं। मंत्रों की भूमिका व पृष्ठभूमि शीर्षक से मंत्रों के ऋषि जो 'वृषाकपि इन्द्र इन्द्राणी' हैं, में 'इन्द्राणी' का अर्थ ग्रहण करके उसका प्रयोजन भी बताया है। **भूमिका व पृष्ठभूमि को अर्थ में मिला देना सत्यजित् जी का ही चमत्कार है। जैसे कोई महर्षि की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका को पूरा का पूरा उनके वेद भाष्य में आरोपित करके कहे कि महर्षि ने वे प्रकरण शब्द व वाक्य भी लिखे हैं, जो वेदों में हैं, ही नहीं। तब क्या ऐसा कथन उस आरोप लगाने वाले की मूर्खता का परिचायक नहीं होगा? यही दशा यहाँ सत्यजित् जी की है।** जब मैं स्वयं कह रहा हूँ कि ऋषि का मंत्रार्थ में उपयोग नहीं परन्तु ऋषि का प्रयोजन उस मंत्र की उत्पत्ति एवं उसके सृष्टि प्रक्रिया पर पड़ने वाले प्रभाव में अवश्य है, तब मैं 'इन्द्राणी' का अर्थ क्यों नहीं प्रयोग करूंगा? वेद मंत्र का भाष्य अलग है और उसकी पृष्ठभूमि अलग है।

अब आगे लिखते हैं–

''वृषाकपिः' शब्द का अर्थ भी नैष्ठिक जी ने अपने प्रमाणों में दिया है। इस शब्द पर भी ऊपर वाली बातें लागू होती है। अतः यह भी प्रमाण नहीं माना जा सकता। वैसे भी 'वृषाकपिः' शब्द महर्षि के वेदभाष्य में कहीं नहीं आया है। नैष्ठिक जी ने जो महर्षि के नाम से लिखा– 'वृषाकपिः = वृषा चाऽसौ कपिः' यह महर्षि ने कहीं नहीं लिखा। .....'' किन्तु यहाँ संज्ञावाची समस्त पद को तोड़कर उसको महर्षि के अनुकूल करने का प्रयास किया गया है। नैष्ठिक जी ने वृषाः शब्द लिखा है। विसर्गयुक्त 'वृषाः' शब्द न तो तीन मंत्रों के महर्षि भाष्य में है, न ही इन तीन मंत्रों में। 'वृषाः' के तीसरे अर्थ 'परशक्तिबन्धकः' को यजुर्वेद भाष्य २.१६ में बताया गया है, किन्तु यहाँ महर्षि भाष्य में वह नहीं मिलता है, मूल वेद मंत्र में भी वृषाः या वृषा शब्द तक नहीं है। मिलते–जुलते वृष्ट्या, वशा, वृष्टिम् शब्द तो इस मंत्र में हैं, पर इन्हें वृषाः या वृषा मानना भ्रान्ति है। जाने अनजाने में यहाँ भी कुछ हेर फेर हो गयी है।''

उत्तर :– 'वृषाकपिः' व 'वृषा' शब्दों का मंत्रों में न होने पर भी इनका अर्थ मंत्रार्थ में नहीं बल्कि मंत्रों की भूमिका व पृष्ठभूमि में दिया है। इसका समाधान भी पूर्ववत् समझें अर्थात् इन्द्राणी के समान इनका उपयोग व आवश्यकता समझें। रही बात, महर्षि के वेद भाष्य में 'वृषाकपिः' शब्द के आने की। इसी प्रकार आगे भी कुछ प्रमाण महर्षि के वेद भाष्य से बाहर के होने का, उस विषय में ज्ञातव्य है कि यद्यपि अपने लेख में प्रमाणों के नीचे मैंने लिख दिया था।

''**सूचना–** यहाँ सभी प्रमाण महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के वेद भाष्य से लिए गये हैं'' वहाँ मैंने वेद भाष्यों वाले पते से उद्धृत प्रमाण महर्षि के वेदभाष्य से लिए गये थे जबकि अन्य कुछ प्रमाण निघंटु, कुछ ब्राह्मण ग्रन्थ तो कहीं मैंने स्पष्टता स्वयं की है। विज्ञ पाठक स्वयं भी इतना तो विचार कर ही सकता है कि बिना वेदभाष्य वाले पते वाले प्रमाण वेदभाष्य में क्यों ढूंढ़े? हाँ, एक शब्द 'प्रायः' लगा देता, तो स्पष्टता हर पाठक को हो जाती, तो अच्छा रहता। शीघ्रतावश वह नहीं कर सका। इससे कोई भारी अपराध नहीं हो गया कि

उसके विरुद्ध सत्यजित् जी जैसे विद्वानों को सब कामकाज छोड़कर लेख लिखना पड़े, परन्तु क्या करें, वे विवश हैं। मैंने 'वृषाकपिः' इस समस्त पद को तोड़कर अर्थ किया है, क्या इससे कोई व्याकरण पढ़ा व्यक्ति असहमत वा विरुद्ध हो सकता है? **सब काम महर्षि करने आयेंगे? क्या इतना विवेक भी हम लोगों में नहीं होना चाहिए? हाँ, 'वृषा' शब्द को 'वृषाः' लिखना असावधानीवश है। आपने ध्यान दिलाया, एतदर्थ धन्यवाद।** वस्तुतः ऐसी त्रुटियां निकालना ही निष्पक्ष समालोचकों का काम है। प्रूफ में असावधानी हो ही जाती हैं। क्या परोपकारिणी सभा से प्रकाशित वेदभाष्यादि महत्वपूर्ण साहित्य की त्रुटियों को कभी देखने का प्रयास किया है? अथवा केवल परछिद्रान्वेषण की ही मनोवृत्ति है। आपके लेख में मैंने भी कुछ प्रयोग अशुद्ध पाये हैं। उन्हें प्रूफ रीडिंग की असावधानी भी नहीं कह सकते। उदाहरण के लिए आपके प्रथम लेख के पृष्ठ 20 पर 'उल्लेखित' शब्द का प्रयोग किया है। क्या यह व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है? क्या यह 'उल्लिखित' नहीं होना चाहिए? आप व्याकरण के विद्वान् हैं, आप विचारें। यह मुद्रण भूल भी नहीं मानी जा सकती। यदि आप कहें कि मेरे लेख में भी 'उल्लेखित' है, तो वह तो अशुद्ध है। 'सत्यार्थ सौरभ' में 'उल्लिखित' है, न कि 'उल्लेखित'। यदि आप 'उल्लेखित' को अशुद्ध मानते तो आप बिना टिप्पणी के कैसे रहते? वैसे मेरी वृत्ति इस प्रकार के छोटे–2 दोषों को तिल का ताड़ बनाकर प्रचारित करने की नहीं है। मैं केवल सैद्धान्तिक दोषों पर ही प्रायः विचार करता हूँ अथवा व्याकरण का ऐसा कोई गम्भीर दोष हो, जिससे अर्थ बदल जाये, उस पर ही ध्यान देता हूँ अन्यथा व्यर्थ छेड़छाड़ करना मुझे रुचिकर नहीं लगता। जहाँ तक 'वृषा' का अर्थ 'परशक्ति बन्धकः' का यजुर्वेद २.१६ में न मिलने का प्रश्न है, यह भी असावधानी हुई है। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट से प्रकाशित वैदिक कोष में 'वृषा' का अर्थ 'परशक्ति बन्धकः' का पता २.१६.४ दिया है। यहाँ वेद के नाम नहीं दिये हैं। जहाँ तीन अंकों में पता है, वहाँ ऋग्वेद भाष्य का ग्रहण किया जाता है और जहाँ दो अंकों में पता है, वहाँ यजुर्वेद भाष्य का ग्रहण। इस पते को देखने में इस कोष की छाया प्रति के कुछ धुंधले होने से ४ का अंक देखने में रह गया और पता २.१६ लिख दिया, जो दो अंक का हुआ। इस कारण वेद का नाम यजुर्वेद लिख दिया गया। वस्तुतः यह अर्थ ऋग्वेद भाष्य २.१६.४ में है, आप वहाँ देख सकते हैं। मैंने मन से अर्थ करके महर्षि के नाम से प्रकाशित नहीं किया है। यह अर्थ महर्षि का ही है। इससे कोई मंत्र भाष्य की वा सैद्धान्तिक भूल नहीं कह सकते। पुनरपि यह ध्यान दिलाया, धन्यवाद।

आगे सत्यजित् जी एक ऐसी शंका रखते हैं, मानो उनके दोनों लेखों में एक ब्रह्मास्त्र हाथ लगा हो। इसी ब्रह्मास्त्र के बल पर वे सिंह गर्जना करते हुए बड़े–2 व्यंग्य करते हैं। अब हम उनके ब्रह्मास्त्र की वास्तविकता की परीक्षा करते हैं। वे कहते हैं–

''नैष्ठिक जी ने चौथे शब्द 'कपृत्' का अर्थ लिखा– क+पृत् 'पदादिषु मांस्पृत् .....' (वा. अष्टाध्यायी ६.१.६३) से 'पृतना' को 'पृत्' आदेश। महर्षि ने 'कपृत्' शब्द को इस प्रकार तोड़कर कहीं व्याख्या नहीं की। नैष्ठिक जी द्वारा 'कपृत्' शब्द के 'पृत्' से 'पृतना' अर्थ किया गया, वह भी मनमानी है। व्याकरण का जो वार्तिक है प्रमाणरूप में दिया गया उसे भी बिना समझे मनमानी से बलात् लागू किया गया। वार्तिक में स्पष्ट लिखा है, 'पदादिषु'। जब 'पृत्' शब्द पदादि में नहीं है, ऐसे में वार्तिक से 'पृतना' को 'पृत' आदेश नहीं हो सकता। पर क्या करें? वैज्ञानिक अर्थ करने के आवेग में विवेक टिक नहीं सकता। विज्ञान के चमत्कार से पदादि में न होते हुए भी पृत् आदेश हो जाता होगा। ...... जब यहाँ 'कपृत्' के पृत् से 'पृतना' का ग्रहण हो ही नहीं सकता, तब 'पृतना' के अर्थ बताना व्यर्थ है। 'पृतना' का जो अर्थ किया गया है– सेना व संग्राम, यह क्रमशः आप्टे व महर्षि का लिखा है। दोनों अलग–2 अर्थ हैं परन्तु विज्ञान की प्रयोगशाला में मिश्रण बनते रहते हैं। अतः भाष्य कर दिया, ''प्राणों की सेना अर्थात् धारा Stream एवं उनका संघर्ष interaction'' ..... 'क' का अर्थ भी जो 'प्राण' किया गया, वह महर्षि दयानन्द ने कहीं किया है? क्या महर्षि ने अपने वेदभाष्य में कहीं 'क' का अर्थ 'प्राण' किया है? ...... हाँ, किसी वैज्ञानिक दृष्टि से यह महर्षि के भाष्य में मिल गया हो, खोज लिया गया हो, तो अलग बात है। ...... नैष्ठिक जी ने महर्षि के 'संग्राम' अर्थ को संघर्षण interaction के रूप में ग्रहण किया ..... वास्तविकता यह है कि महर्षि ने 'पृतना' शब्द का 'संग्राम' अर्थ भी कहीं नहीं किया है .... इसे कहते हैं हवाई किले बनाना, बिना तिल के ताड़ बना देना। .... बिना नीव का मकान बनाने वाले लोग सुने जाते हैं पर यहाँ तो पहले बिना भूमि के नींव भी बना दी गयी व फिर उस कल्पित नींव पर बिना नींव का मकान भी खड़ा कर दिया गया। यह जन सामान्य

को महर्षि दयानन्द के नाम पर मूर्ख बनाने की भूमिका है, ठगने की पृष्ठभूमि है, अपने को वैज्ञानिक चिंतक कहलाने की चतुराई है।

ऐसा मिथ्या कथन चाहे ज्ञानपूर्वक हुआ हो या अज्ञानता से दोनों स्थितियों में ऐसे व्यक्ति का शोधकार्य (भाष्य) विश्वास के योग्य नहीं हो सकता।

(7) कपृत् व पृतना—शब्द—विचार

उत्तर :— यही इन्हें सबसे बड़ा ब्रह्मास्त्र प्रतीत हो रहा है जो मेरे सारे परिश्रम को ध्वस्त कर उसे ठगी, धोखाधड़ी व मूर्खता में परिवर्तित करने के दिवास्वप्न देख रहे है। ये श्रीमान् जी पहले तो लिख रहे हैं कि महर्षि ने कहीं 'कपृत्' शब्द का अर्थ नहीं किया फिर मुझे बता रहे हैं कि महर्षि ने 'कपृत्' शब्द की इस प्रकार तोड़ कर व्यारव्या कहीं नहीं की। जब उन्होंने इस शब्द का अर्थ ही नहीं किया तो इस शब्द को तोड़ कर व्याख्या करना कैसे हो सकता है? जरा यह भी बता दें कि 'कपृत्' का अर्थ पुरुषेन्द्रिय कैसे हुआ और क्या इसका दूसरा अर्थ नहीं हो सकता था ?

इस 'कपृत्' शब्द को तोड़कर ही व्याख्या स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक ने ऋग्वेद १०.८६.१६ व १७ तथा ऋग्वेद १०.१०१.१२ मंत्र में की है। जहाँ कम् + पृत् यह विभाग किया है। अथर्ववेद भाष्य के २०.१३७.२ मंत्र के भाष्य में प्रो. विश्वनाथ जी विद्यालंकार ने भी 'कपृत्' को इसी प्रकार तोड़कर इसी कम् + पृत् के रूप में सुखों की पूर्ति करने वाला किया है। यहाँ नर पद का अर्थ इन्होंने भी मनुष्य नहीं किया है बल्कि नेता किया है। मूर्ख भी जानता है कि 'नेता' शब्द का अर्थ 'ले जाने वाला' होता है, न कि केवल मनुष्य, जैसी कि आपकी हठ है। तब तोड़ कर व्याख्या मैंने ही नहीं की है। **मैं आपसे पूछता हूँ कि आप विद्वान् हैं, तो साहस करके इसका अर्थ तोड़े बिना करके दिखायें अन्यथा जब अन्य विद्वान् कपृत् = क +पृत् करके अर्थ करें तो सत्य है और यदि मैं करूँ तो गलत, यही तो आप लोगों की मनोवृत्ति का रोग है। वस्तुतः आप पाठकों को ऐसा भ्रमित करना चाह रहे हैं कि जैसे मैंने कपृत् = क+पृत् करके अर्थ करके मानो बहुत बड़ा अनर्थ कर दिया? यह द्वेष और छलकपट की पराकाष्ठा है।** अब 'क' शब्द को लेते हैं। आप मुझसे पूछ रहे हैं कि महर्षि ने 'क' का अर्थ प्राण कहाँ किया है? आप अपने पाठकों को यह नहीं बताते कि मैंने यह अर्थ लिया कहाँ से है? मैंने स्पष्ट ही जैमिनीयोपनिषद ब्राह्मण का प्रमाण दिया है—'प्राणो वाव कः' क्या यह प्रमाण अनार्ष है? **यदि आप ब्राह्मण ग्रन्थों के ही प्रमाण नहीं मानेंगे, तो आपकी अज्ञानता ही नहीं अपितु मूर्खता भी होगी।** इस विषय में मैं पूर्व में भी स्पष्ट कर चुका हूँ कि मैंने महर्षि के वेदभाष्य के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थ, निघंटु आदि के भी प्रमाण दिये हैं। तब भी आप पाठकों को भ्रमित करने के आवेग में कुछ भी कहने को उद्यत हैं। अब 'पृत्' शब्द का अर्थ सेना कैसे बना, यह आपको आपत्ति है। आप आप्टे का शब्द कोष देखें, जहॉ पृ + क्विप् + तुक् से पृत् शब्द बना और उसका अर्थ दिया है – सेना। जहाँ तक 'पृतना' से 'पृत्' आदेश होने की बात है, उस विषय में मेरा मन्तव्य है कि यहाँ अपदादि में 'पृत्' आदेश का यह छान्दस प्रयोग है। **वेद में अनेक ऐसे प्रयोग हैं, व्याकरण काम नहीं करता। वेद के सभी शब्दों को आज तक कोई वैयाकरण अपनी सीमा में बांध नहीं सका। 'व्यत्ययो बहुलम्', 'छन्दसि बहुलम्' एवं 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' सूत्रों की रचना भगवत्पाणिनि ने इसी कारण की।** अगर आपका व्याकरण इस स्थिति को महाभाष्यकार द्वारा प्रस्तुत उन परिस्थितियों के अर्न्तगत नहीं मानता, जिन प्रयोगों में व्याकरण का अतिक्रमण होता है, तब इसे दूसरी भाँति समझें। 'पृत्' शब्द का अर्थ 'पूर्ण करने वाला' स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक व प्रो. विश्वनाथ जी विद्यालंकार दोनों ही विद्वानों ने अपने उपर्युक्त दोनों स्थलों पर किया है। तबमैं ब्राह्मण के प्रमाण से 'क' का अर्थ प्राण सिद्ध कर चुका हूँ, तब जिस प्रकार इन विद्वानों ने 'कपृत्' का अर्थ 'सुखों की पूर्ति करने वाला' किया, उसी प्रकार मेरा 'कपृत्' का अर्थ होगा 'प्राणों की पूर्ति करने वाला'। अब प्राणों की पूर्ति कौन करेगा, जिसके पास प्राणों का बाहुल्य हो। तब उसे 'प्राणों की धारा वा सेना' कहने में क्या बाधा है? बाधा तो दूर बल्कि यही अर्थ सर्वोत्तम सिद्ध होता है, जब हम आधिदैविक भाष्य की बात करें, तो। यहाँ एक अन्य विकल्प यह भी कि 'पृत्' शब्द 'पृथु प्रक्षेपे' धातु से क्विप् प्रत्यय होकर बना है तथा 'थ्' के स्थान पर 'त्' यह वर्ण व्यत्यय से हुआ है। तब 'कपृत्' का अर्थ हुआ जो प्राणों को प्रेरित करके सतत फैंकती रहती है, ऐसी प्राणों की धारा वा सेना। **इस प्रकार हर तरह से 'कपृत्' का मेरा अर्थ प्रामाणिक है। आप पाठकों को भ्रमित करने हेतु नितान्त मिथ्या भाषण का आश्रय लेते हुए पूछते हैं कि महर्षि ने 'पृतना' का 'संग्राम' कहाँ किया है? क्या यजुर्वेद ६.२६ के भाष्य में 'पृत्सु' का अर्थ 'संग्रामेषु' आपको नहीं**

मिला है? यदि नहीं तो वेदभाष्य देखें पुनः बोला व लिखा करें। क्या करें, उन्हें तो वैर का भूतोन्माद है, तब देखने पर भी सत्य दिखाई कैसे देगा? आपकी मानसिकता है कि 'कपृत्' का अर्थ उपर्युक्त दोनों प्रमाणों में 'नरः' शब्द के साथ हुआ है, तब मनुष्य के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त होना चाहिए, इससे आप इस अश्लील अर्थ जो आचार्य सायण की अन्धी नकल है, की पुष्टि करना चाहते हैं। आपको यह ध्यान नहीं कि प्रो. विश्वनाथ जी ने 'नरः' का अर्थ राष्ट्र नेता किया है। श्री क्षेमकरणदास जी त्रिवेदी ने भी नेता ही किया है। आप बिना गम्भीरता से पढ़े, केवल ईर्ष्याग्रस्त होकर खण्डक बनना चाहते हैं और इसमें जो भी हठ पकड़नी हो, पकड़ने को तैयार रहते हैं। 'नर' शब्द के अर्थ देखो, महर्षि ने मनुष्य के अतिरिक्त और कितने किये हैं? 'नायक' ऋग्वेद १.१००.८ नेता ऋग्वेद १.११२.२२ नयनकर्ता वायु ऋग्वेद १.६४.१० **यहाँ फिर विभक्ति वचन देखकर किसी को भ्रमित मत करना। विभक्ति वचन न लिखकर ये अर्थ हिन्दी भाषा में ही लिख दिये हैं। जरा विचारो, ये नयनकर्ता वायु क्या होते हैं? विचारते रहो! कभी तो बुद्धि जगेगी।** आप 'पृतना' का अर्थ संग्राम नहीं मानते। सब स्थानों पर महर्षि की रट लगा रहे हैं। क्या निघण्टु प्रमाण नहीं है? यह वही निघण्टु है जिसको महर्षि वेदार्थ में एक आधार ग्रन्थ मानते हैं परन्तु आपको तो कुछ भी मान्य नहीं है। **क्या इस आर्य जगत् में ऐसा कोई विद्वान् हुआ है जो केवल महर्षि के ग्रन्थों के आधार पर ही कोई अनुसंधान कर सका है? क्या उसे किसी अन्य आर्ष ग्रन्थों की आवश्यकता नहीं पड़ी? क्या आप किसी आर्ष ग्रन्थ को नहीं पढ़ते–पढ़ाते, कुछ तो डरो, मिथ्या निन्दा करने से।**

क्या इतने पर भी कहेंगे कि अग्निव्रत ने बिना भूमि नींव व फिर हवाई महल खड़ा कर दिया? क्या अब भी मेरे भाष्य को ठगी की पृष्ठभूमि व ऋषिभक्तों को मूर्ख बनाने की भूमिका कहने का पाप करेंगे? **कभी अपने गिरेवान झांक कर देखे हैं? परोपकारिणी सभा के अधिकारी किस–2 निर्ममता से धन मांगते हैं? क्या सारी फाइलें सार्वजनिक कराना चाहते हैं? यह अग्निव्रत तो अपनी विज्ञप्तियों में स्पष्ट लिखता है कि किस–2 पापी दानदाता का दान नहीं चाहिए? है, परोपकारिणी सभा में साहस जो अपनी विज्ञप्तियों में ऐसा लिखने का साहस करे? क्या मेरी भाँति भादरिया जी महाराज का लाखों, करोड़ों का प्रस्ताव ठुकराने का आप में से कोई माई का लाल साहस कर सकता है? आपने तो उनका पत्र तथा उनको मेरा उत्तर देखा था। आश्चर्य है, फिर भी मुझे ठग व मूर्ख बनाने वाला कहने का पाप कर रहे हैं। आप तो हमारे शिविर में नहीं थे परन्तु एक शायद आपके द्वारा भेजा मुझसे सर्वथा अनजान व्यक्ति जो आपको भी जानता था तथा प्रिय आचार्य कर्मवीर जी मेधार्थी तो थे। उनसे पूछ लेना कि मैं दान को कैसे स्वीकार व कैसे अस्वीकार भी करता हूँ?** आप बतायें कि आज आर्य जगत् में कितने विद्वान् होंगे जिनके पास न तो कोई बैंक बेलेंस है और न प्रायःव्यक्तिगत दक्षिणा ही स्वीकार करते हैं। कितने योगी रोजाना एक हजार रुपये दान करने का जीवन भर व्रत लेने वाले अपने निकट शिष्य का दान केवल इस कारण अस्वीकार कर सकते हैं कि वह उस आय पर आयकर incom tax नहीं भरता। कितने तपस्वी किसी सन्तानहीन श्रद्धालु के सेवानिवृत्त होने पर मिलने वाली राशि में से एक बड़ा दान यह कहकर अस्वीकार कर सकते हैं, कि इसे अपने भाई–भतीजें को दें, जिससे वे वृद्धावस्था में सेवा करते रहें। कितने अध्यात्मचिन्तक बिना किसी आधार अस्थायी रुप से आर्य समाज मन्दिर में रहते हुए भी किसी निःसंतान श्रद्धालु वृद्ध द्वारा अपनी सम्पूर्ण अचल सम्पत्ति लगभग 80 बीघे कृषि भूमि देने के आग्रह को भी परिवारीजनों को देने की सलाह देकर कई बार ठुकरा सकते हैं? जरा सोचें, योगिराज! यह सब इस अग्निव्रत ने ईश्वर कृपा से किया हैं। धन व यश दोनों की कामना रही ही नहीं हैं और न पहले ही थी। मेरे निकटस्थ ही मुझे जानते हैं। **आज जीवन में प्रथम बार किसी ने मुझ पर ठगी व मिथ्याचरण का सार्वजनिक आरोप लगाया है? आप एक ऐतिहासिक व्यक्ति बन गये हैं। आप मेरे जीवन पर साधना के समय विचारना तो आपका आत्मा अवश्य इस पाप के लिए रोएगा।** चलें, कोई बात नहीं। महापुरुषों को भी कब छोड़ा गया है? तब मैं क्या हूँ? मेरे जैसा दान लेने वाला आपके सभा के इतिहास में कभी कोई ऐसा उदाहरण रहा हो, तो बतायें। पहले कोई रहा भी हो परन्तु अब क्या होता है, यह भी देखें। **ईश कृपया अर्थशुचिता व अस्तेय का व्रत जो मैं निभाता रहा हूँ, सत्य का जो व्रत मैंने सदैव अपनाया है, उस पर आप व आपकी सभा सोच भी नहीं सकते,** इस कारण ऐसे मिथ्या भाषण मत करो। विभिन्न पदों के उन अर्थों जो निघंटु, ब्राह्मण ग्रन्थों आदि से उद्धृत किये हैं, उन्हें महर्षि के वेद भाष्य में न होने से अप्रामाणिक तथा मुझे असत्य परोसने वाला कहने का अपराध न करें, तो अच्छा रहेगा।

आपकी दृष्टि में संग्राम का अर्थ संघर्षण करना हवाई किले बनाना अथवा तिल का ताड़ नहीं अपितु बिना तिल के ताड़ बनाना है? आश्चर्य है, आप विद्वान् कहलाने लगे और संग्राम व संघर्ष का भाव भी नहीं समझते। **मूर्ख व्यक्ति भी जानता है कि संग्राम अर्थात् युद्ध में संघर्ष ही होता है। प्रीतिपूर्वक मेलजोल वा प्रीतिभोज नहीं होता। सारे विश्व में तो लड़ाई संघर्ष को ही संग्राम कहा जाता है परन्तु आपका स्वकल्पित व्याकरण अथवा ऋतम्भरा बुद्धि से युक्त दर्शन संग्राम का अर्थ मैत्री सम्मेलन करता होगा। धन्य हो महाभाग।**

अब आगे सत्यजित् जी लिखते हैं–

5. अब पांचवें शब्द 'सक्थिः' को मनमाने अर्थ में ढालने के लिए की गयी उनकी कसरत देखिए। प्रमाण देते हुए वे लिखते हैं– ''सक्थिः = सजतीति (उणादि कोषः), षञ्जि संगे = आलिंगन करना, सटे रहना, सक्थिभ्यां क्रौञ्चौ (अजायेताम्) (जै. २.२६७), क्रौञ्चः = रज्जुः (तां.ब्रा.), रज्जुः = रश्मिः, अत्र प्रमाणानि रश्मयः = रज्जवः किरणा वा (भाष्य यजुर्वेद २६.४३), रश्मेव = (रश्मा + इव) = किरणवद् रज्जुवद् वा (भाष्य ऋग्वेद ६.६७.१), प्राणाः रश्मयः (तै.सं.)।

वेद मंत्रों में 'सक्थ्या' शब्द है, उसे घटाने के लिए 'सक्थिः' शब्द को पकड़ा। इसका महर्षि सम्मत अर्थ खोजते हुए वे उणादि कोष में पहुँचे। वहाँ के उद्धरण को अधूरा उठाकर यहाँ रख दिया, क्योंकि शेष छोड़ा गया अर्थ उन भाष्यकारों के अनुकूल था, जिनका इन्होंने खण्डन किया है। उणादि कोष का पूरा व अपरिवर्तित पाठ है– ''सजतीति सक्थि, ऊरुदेशो वा'' प्रथम तो यहाँ विसर्ग रहित 'सक्थि' शब्द है, जिसे उन्होंने विसर्ग युक्त 'सक्थिः' शब्द बना दिया। वेद में कहीं भी ऐसा विसर्ग युक्त 'सक्थिः' शब्द नहीं आया, न महर्षि ने कहीं प्रयोग किया, लगता है विज्ञान की नई खोज है। खैर, इसे मुद्रण दोष कहकर अपने को सरलता से बचाया जा सकता है।

विसर्ग रहित 'सक्थ्या' शब्द जो कि दोनों मंत्रों में है, इसको दोनों आधिदैविक भाष्यों व प्रथम आधिभौतिक भाष्य में विसर्ग युक्त 'सक्थ्याः' कर दिया गया है। ...... इन दोनों मंत्रों के वैद्यनाथ जी वाले प्रथम मंत्र के भाष्य में विसर्ग युक्त 'सक्थ्याः' छपा है व दूसरे मंत्र के भाष्य में विसर्ग रहित 'सक्थ्या' छपा है। वैचित्र्यप्रिय नैष्ठिक जी को वैद्यनाथ जी की विसर्ग वाली इस नई बात में विज्ञान दिखा होगा, दो में से एक स्थान पर विसर्ग, एक स्थान पर विसर्ग का अभाव, विज्ञान की दृष्टि से 50–50 प्रतिशत हुआ। ....

दूसरा उणादि कोष के प्रस्तुत प्रमाण में नैष्ठिक जी ने 'ऊरुदेशो वा' इतने अंश को निकाल फेंका। जब वैज्ञानिक भाष्य में महर्षि का अर्थ बाधक बन रहा हो, तो वह कैसे स्वीकार हो सकता है? वैज्ञानिक भाष्य में कोई भी रुकावट नैष्ठिक जी को स्वीकार्य नहीं है? .... महर्षि के तीन स्थलों पर अर्थ में यह शब्द सदा मनुष्य के सन्दर्भ में, उसके शरीरावयव के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पर नैष्ठिक जी ने इससे मुख फेर लिया, क्योंकि इससे उन अन्य भाष्यकारों के अर्थ की पुष्टि होती थी, जिनका वे ख्ण्डन कर रहे हैं व नैष्ठिक जी का वैज्ञानिक अर्थ भी नहीं निकल पा रहा था।

...... षञ्जि संगे, यहाँ भी इकार की नई खोज दिख रही है। पाणिनि ने धातुपाठ में तो इकार रहित 'षञ्ज संगे' पाठ मिलता है। .... क्रौञ्चौ शब्द पर इनकी दृष्टि पड़ी। 'क्रौञ्चः' का 'रज्जु' अर्थ भी तां. ब्रा. में ढूंढ निकाला और वैज्ञानिक अर्थ कर दिया 'रज्जुः = रश्मिः'। क्या यह अर्थ ताण्ड्य ब्राह्मण में दिया है? महर्षि ने 'रश्मि' शब्द का अर्थ 'रज्जु' किया है किन्तु 'रज्जु' शब्द का अर्थ 'रश्मि' कहीं नहीं किया है। .... यह कलाबाजी मात्र है। आर्यों को भ्रमित करना मात्र है।

.... रज्जु का रश्मि अर्थ लेकर, रश्मि का इच्छित अर्थ प्राण ले लिया। इस प्रकार 'सक्थि' के साथ 'प्राण' को जोड़ने की वैज्ञानिक अनुसंधान यात्रा समाप्त हुई। क्या नैष्ठिक जी बता पायेंगे कि 'प्राणाः रश्मयः' (तै. सं.) यह अंश महर्षि ने अपने भाष्य में कहाँ दिया है? क्या यही ऋषिभक्ति है? सत्य के पुजारी महर्षि की महिमा बढ़ाने की प्रतिज्ञा क्या ऐसे असत्य उपायों से पूरी होगी? क्या महर्षि के प्रति असत्य की श्रद्धांजलि देना चाहते हैं? .... प्राण! प्राण! प्राण! सब कुछ प्राण। वेद भी प्राण, छन्द भी प्राण, प्राणों को ही ऋषियों ने ग्रहण किया ..... प्राण ही प्राण। ऐसी खींचतान से कहीं बेचारे प्राण के प्राण ही न निकल जायें। प्राण का विस्तार एक जयपुर के श्री मधुसूदन ओझा व मोतीलाल जी शास्त्री ने भी किया था। बड़ा विस्तार किया गया, वैसा ही विस्तार नैष्ठिक जी भी करने में लगे हैं। आर्य समाजी को भी किसी क्षेत्र में पौराणिकों से पीछे नहीं रहना चाहिए। .... यह ऋषियों की शैली नहीं है। नैष्ठिक जी के भाष्य इसी तरह के हो रहे हैं। ....''

(8) 'सक्थि' का आधिदैविक स्वरूप एवं प्राण महिमा

उत्तर :– यहाँ भी विसर्ग पर इतना बड़ा बखेड़ा खड़ा करके इतने व्यंग्य किये हैं। 'सक्थि' के स्थान पर 'सक्थिः' यह अशुद्ध छप जाना इतने बड़े व्यंग्य का कारण नहीं हो सकता पुनरपि आपका धन्यवाद। यहाँ आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री के भाष्य में एक स्थान पर 'सक्थ्याः' तो दूसरे स्थान पर 'सक्थ्या' है। पं. जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ के भाष्य में एक स्थान पर 'सक्थ्योः' तथा दूसरे स्थान पर 'सक्थ्या' है। हाँ, स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक के भाष्य में 'सक्थ्या अन्तरा' दोनों स्थानों पर है, वैसे यह छान्दस प्रयोग है। 'सक्थि' के ये रूप लोक में नहीं बनते। क्या आप जानते हैं कि 'सक्थ्या' कैसे बना और 'सक्थ्याः' क्यों नहीं हो सकता? मैंने जहाँ 'सक्थ्याः' अकेला पृथक् पद दर्शाया है, वहाँ विसर्ग लगाए तथा जहाँ 'सक्थ्या' के पश्चात् 'अन्तरा' आया है? वहाँ विसर्ग नहीं लगाया। क्या यहाँ 'भोभगोअघो ....' तथा 'लोपः शाकल्यस्य' से विसर्ग का लोप नहीं होना चाहिए? फिर आप 50–50 प्रतिशत मिश्रण का व्यंग्य करके आर्यों को क्यों भ्रमित कर रहे हैं? आपने यह देखा है कि मैंने कहाँ व क्यों विसर्ग का लोप किया है परन्तु फिर भी वैर का भूत आपको मानने नहीं देता। हाँ, यदि आप 'सक्थ्या' को ही शुद्ध मानते हैं, तो प्रथम तो उसका आधार बताकर आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री के 'सक्थ्याः' एवं पं. जयदेव जी विद्यालंकार के 'सक्थ्योः' का खण्डन करते उसके पश्चात् मेरी बारी थी और खण्डन भी सप्रमाण करते, तब मैं तो धन्यवाद ही देता परन्तु आप तो आप ही हैं न। यदि 'सक्थ्या' को ही सत्य माना जाये और कदाचित् यही शुद्ध है, तब भी क्या आपकी योग्यता इतनी हो गयी कि ऐसे मूर्खतापूर्ण व्यंग्य करने के अधिकारी हो गये? **आपको लेख प्रूफ रीडिंग के लिए नहीं भेजे थे बल्कि दोनों भाष्यों की तुलना के लिए भेजे थे। एक ओर मेरा वैज्ञानिक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक भाष्य था तो दूसरी ओर असभ्य अश्लील भाष्य था। उसमें आपको अश्लील, असभ्य भाष्य अच्छा लगा, यह आपकी रुचि का विषय है। हर व्यक्ति की रुचि भिन्न–2 होती है, प्रकृति, विवेक भी समान नहीं होता। अतः आप स्वतंत्र हैं। आपने मेरे आध्यात्मिक व आधिभौतिक अर्थों पर क्यों कोई टिप्पणी नहीं की? क्यों आपने मेरे भी भाष्यों को नहीं छापा, जिससे पाठक स्वयं तुलना करके देख लेते कि कौन सा भाष्य अच्छा है?** 'सक्थि' का उणादि कोष के अर्थ के अधूरेपन पर आपने व्यंग्य किया कि पूरा अर्थ क्यों नहीं लिया? 'सजतीति' लेने से यौगिक अर्थ अनेक हो सकते हैं। वही यौगिक अर्थ मैंने ग्रहण किया है। मैंने ही नहीं चतुर्वेद भाष्यकार पं. जयदेव शर्मा, मीमांसा तीर्थ, विद्यालंकार ने भी 'सजतीति' से ही 'सक्थ्या' का अर्थ 'आसक्तिजनक राग द्वेषादि के बीच' किया है। अब विचारें, कि यह अर्थ महर्षि ने कहाँ किया है? क्या यह 'षञ्ज संगे' धातु से नहीं निकाला है? क्या उणादि कोष का उतना ही उपयोग नहीं किया है, जितना मैंने किया है। भावों को ध्यान में रखकर प्रसंगानुकूल अर्थ की विविक्षा करनी पड़ती है। 'चत्वारोमूर्खपण्डिताः' की कथा की भाँति कूप मण्डूप नहीं बना जाता। फिर भी आप मिथ्या आग्रह 'ऊरुदेशो वा' के ग्रहण की करें, तो भी सुन लें। **मैंने जो प्राणों की दो धारायें अपने चित्र में सक्थियों के रूप में दर्शायी हैं, वे सूर्य रूपी पुरुष की जंघाएं हैं। जिस प्रकार मनुष्य के धड़ का सम्पूर्ण भार जंघाओं पर रहता है, उसी प्रकार सूर्य के बहुत बड़े भाग का भार सूर्य के अक्ष के इन्हीं उत्तर व दक्षिण भागस्थ प्राणों की धाराओं पर रहता है। आप कहेंगे कि सूर्य को पुरुष कैसे कह दिया? यह चमत्कार मेरा नहीं बल्कि शतपथ ब्राह्मण ने कहा 'पुरुषो वाव संवत्सरः' १२.२.४.१।** फिर आप कहेंगे कि विज्ञान की नकल का व्यर्थ प्रयास है, तो सुन लें कि ऐसा मैंने विज्ञान की किसी पुस्तक में नहीं पढ़ा है। मैं नहीं जानता कि वर्तमान विज्ञान यह जानता व मानता है वा नहीं? मैं विज्ञान की अन्धी नकल कभी नहीं करता। अगस्त 2004 में 'वर्ल्ड कांग्रेस ऑन वैदिक सायंसेज' में बिग बैंग थ्यौरी को चुनौती देने वाला मैं अकेला था। उस समय प्रो. मित्रा साहब, जो आज बिग बैंग के विश्वविख्यात विरोधी हैं, भी बिग बैंग के विरुद्ध विशेष नहीं थे। उनका अनुसंधान इस विषय पर चल रहा था। वे ब्लैक होल पर अवश्य स्टीफन हॉकिंग को चैलेंज कर चुके थे। मैंने उन्हीं से मिलती जुलती खोज की थी। यही हमारी मित्रता आधार बना। 'षस्जि संगे' धातु लेख में अशुद्ध छप गयी है 'सत्यार्थ सौरभ' के अंक में शुद्ध है। उसके प्रूफ यहाँ देखे गये थे। परन्तु आप तो छिद्रान्वेषण में Ph.D. हैं, तब शुद्ध छपी को क्यों देखेंगे? और उसकी चर्चा भी क्यों करेंगे? जब 'रश्मि' का अर्थ 'रज्जु' हो सकता है, तब 'रज्जु' का अर्थ 'रश्मि' ग्रहण करने में क्या पाप हो गया? 2+2 = 4 तब 4 = 2+2 कहने में क्या अपराध हो गया? क्या करें, बेचारे को विरोध का संनिपात जो हो गया है, फिर बोलने में कमी क्यों रखें? यहीं तो प्रतिभा की अपेक्षा है, दृष्टि की अपेक्षा, जो काम आती है। यदि दुर्जनतोष न्याय से आप 'रज्जु' का अर्थ 'रश्मि' नहीं करें तो सुनें कि महर्षि

ने उणादि कोष १.१५ में इसे 'सृज् विसर्गे' धातु से निष्पन्न माना है। जिसके कुछ अर्थ हैं– रचना करना, बिखेरना, उत्सर्जन करना, मुक्त करना आदि। यहाँ महर्षि ने रस्सी अर्थ किया है, जो जल को निकालने में काम आती है। निरुक्त के अनुसार आदित्य रश्मियां भी रस को आकृष्ट करती हैं। अतः वे भी रज्जु कही जा सकती हैं। हमने भाष्य में जो प्राणों की धारा अर्थ किया है, वह भी सूर्य के दोनों भागों को बांधे व थामे रखती है तथा प्राणों को उत्सर्जित कर केन्द्रीय भाग में विविध सृजन कर्म में सहायक होती हैं, इस कारण ही वे भी रज्जु हैं, जो प्राणरूप ही हैं। आप जिन अश्लील आर्थों की वकालत कर रहे हैं, उनमें भी कभी शंका क्यों नहीं की, कि ये अर्थ कैसे कर दिये? महर्षि ने ऐसे अर्थ कहाँ किए? 'कपृत्' का अर्थ इन्हीं विद्वानों व अन्य विद्वानों ने अन्यत्र पुरुषेन्द्रिय नहीं किया, तो यहाँ कैसे कर दिया? इन अश्लील अर्थों को गृहस्थ विज्ञान बताने वाले क्यों नहीं इनके पदार्थ को ध्यान से पढ़कर भारी असंगति को देख पाये जबकि मेरे सुसंगतं व प्रामाणिक त्रिविध अर्थ का अकारण ही विरोध कर रहे हैं? 'प्राणाः रश्मयः' जब इसका प्रमाण तै. संहिता से दे दिया, तो यह हठ करना कि महर्षि के वेद भाष्य में कहाँ है, यह आपकी सुमेधा के लिए ही सम्भव व स्वाभाविक है, सबके लिए नहीं। सब प्राण–प्राण–प्राण पर व्यंग्य कर रहे हो। **आप क्या जानें कि समस्त सृष्टि विभिन्न प्रकार की तरंगों से भरी है। जो ठोस दिखायी देते हैं वे भी अनेकों तरंगों से युक्त हैं। ये तरंगें ही प्राण हैं। सूर्य तो प्राणों का भण्डार है। इस प्राण की महिमा तो वेद भी गा रहा है–**

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।। अथर्व वेद ११.४.१

इसका भाष्य पढ़ लेना कि प्रो. विश्वनाथ जी विद्यालंकार ने क्या किया? सम्पूर्ण सूक्त में प्राण की महिमा है। प्राणों की महिमा 'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय' में प्रख्यात वैदिक विद्वान् पं. शिवशंकर जी काव्यतीर्थ ने क्या बतायी है, उसे भी पढ़ लेना, कदाचित् आपकी समझ में आ जाये। इन प्राणों, छन्दों का विस्तार से व्याख्यान कभी मेरे ऐतरेय ब्राह्मण व्याख्यान में पढ़ लेना। आधुनिक भाषा में यह सब क्या विज्ञान है, जानने का कभी प्रयास करना। मेरी इस विषय में जिन विद्वानों से अब तक चर्चा हुई है। **आर्य जगत् में दो विद्वान् ऐसे हैं जो इस विषय पर गम्भीरता से विचारते मैंने पाये हैं। अन्यों से चर्चा का अवसर न मिलने से मुझे ज्ञान नहीं। वे विद्वान् हैं श्रीमत् स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, उत्तरकाशी एवं श्री आचार्य वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय। मेरा आपको परामर्श है कि इस प्राण, छन्द व वेद विषय में इनके सानिध्य में कुछ दिन रहकर कुछ सीखें, उसके पश्चात् ही आपको मेरा ग्रन्थ व प्रयोजन समझ में आ सकेगा। वैसे मुझे नहीं लगता कि आपका अहंकार किसी से कुछ सीखने की अनुमति देगा।**

रही बात पं. मधुसूदन ओझा जी एवं पं. मोतीलाल जी शास्त्री की। **तो आप लोग कम से कम मेरे समक्ष इस विषय में कुछ भी बोलने योग्य नहीं है।** आपको स्मरण होगा कि एक बार तिलोरा गुरुकुल के उत्सव पर स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक, आचार्य डा. धर्मवीर जी एवं आप सब मित्र मण्डली की उपस्थिति में इन ओझा जी एवं शास्त्री जी के कल्पित विज्ञान का मैंने खण्डन करते हुए आप सबसे कहा था, ''आप लोग इनके कल्पित विज्ञान से क्यों घबराते हैं?'' डा. भवानीलाल जी भारतीय जिनका अब कोई महत्व आपकी सभा में नहीं रह गया है, के आग्रह पर इनकी समीक्षा में एक लेख लिखा, **'रहस्यवादी वैदिक अवधारणा एक समीक्षा' इनके सम्प्रदाय के भारतभर के विद्वानों को भेजकर चुनौती दी थी। आपकी सभा तो कुछ भी नहीं कर पायी। राजस्थान पत्रिका के प्रधान सम्पादक व मालिक श्री गुलाब कोठारी की उनके कार्यालय में जाकर खिंचाई की थी।** प्रिय डा. मोक्षराज जी आर्य भी साथ थे। आप क्या जानें कि यह सम्प्रदाय क्या है? इसको कैसे चुनौती दी जा सकती है? **अपनों से विवाद के अतिरिक्त आपने किससे शास्त्रार्थ किया है? मुझे पौराणिकों का अनुगामी बता रहे हैं, जिसने पौराणिकों का महान् प्रलोभन ठुकरा दिया और जो पौराणिकों को तुष्ट करके, विविध प्रकार के पाखण्ड करके, समझौते करके सिद्धान्त छोड़कर यशस्वी बने हैं, उनके विषय में कोई टिप्पणी करने का साहस नहीं कर सकते बल्कि उनकी खुशामद ही करते फिरते हैं। उनकी बैशाखी के सहारे आस्था पर भोली भावुक जनता में प्रसिद्ध होकर मुदित होकर स्वयं को धन्य मान रहे हैं, ऐसे आप लोग मुझे पौराणिकों का अनुगामी कहें, तो उन्हें इसके लिए कोई उपमा नहीं दे सकता।** आपसे एक निवेदन अवश्य है कि अश्लीलता के पक्ष में तो इतना बड़ा लेख लिख मारा, अब पशुबलि, मांसाहार व मदिरापान के समर्थन में भी एक लम्बी लेख माला प्रारम्भ कर दें क्योंकि परोपकारी में अप्रैल 1995 में श्री मनोहर विद्यालंकार जी ने वेद से जैनमत, बौद्धमत, चार्वाक, वाममार्ग, अद्वैत, द्वैत सबकी सिद्धी की ही थी। तब आप इस काम में क्यों पीछे रहें? **परोपकारी पत्रिका में सब जायज है।**

(9) दिव्य प्रतिभा की वेदार्थ में भूमिका

वेदार्थ करने में किये जाने वाले अति परिश्रम (मानसिक कसरत) पर व्यंग्य करने वाले इतना भी नहीं जानते कि वेद परमात्मा की वाणी है, जो संकेत मात्र में गूढ़ विद्याओं का प्रकाशन करती है। उस गूढ़ विद्या के प्रकाशन में मानसिक श्रम नहीं करना पड़ेगा तो क्या समाचार पत्र पढ़ने में करना पड़ेगा? वस्तुतः ऐसे पण्डितंमन्य न तो बहुत स्वाध्याय करना चाहते हैं और न इतनी प्रतिभा ही है कि जो पढ़ा वह भली प्रकार समझ में आ जाए। ये लोग एक योगदर्शन के सहारे ही सारी विद्या के धनी बनने का स्वप्न पाले हैं और योगदर्शन भी समझ में ढंग से आया नहीं, यह मेरा पूर्व का अनुभव है। हाँ, अधिक यों नहीं लिखूंगा कि ये पूर्व में किसी संवाद आदि के तत्काल लिखित प्रमाण मांगते हैं। इनका आत्मा जानता है परन्तु आत्महनन इनकी प्रवृत्ति है, जो इन्हें सत्य स्वीकारने नहीं देती। **इनको इतना भी ध्यान नहीं कि महर्षि ने ऋग्वेद भाष्य के प्रारम्भिक मंत्रों का भाष्य विस्तृत व प्रमाणों से युक्त किया था। व्याकरण, निरुक्त, निघंटु, ब्राह्मण ग्रन्थ आदि अनेक ग्रन्थों के प्रमाण थे परन्तु धीरे–2 प्रमाण भाग जैसे समाप्त ही हो गया, मंत्रों के पदच्छेद मात्र करके रह गये। उन पदों के अर्थ भी नहीं किये। उन्हें क्यों शीघ्रता थी? क्यों उन्होंने आर्य भाषा करने वाले पण्डितों पर शेष काम छोड़ दिया? क्यों वे ऋग्वेद को बिना पूर्ण किये उसके साथ–2 यजुर्वेद का भाष्य भी करने लगे? उनका भाष्य कैसा विचित्र हो गया?** देखें, एक ही प्रमाण दूंगा जिससे जहाँ यह विदित होगा कि महर्षि अपने जीवन पर सम्भावित संकट की आशंका से जहाँ अति शीघ्रता में थे, वहीं इस मंत्र से आपको कुछ यह भी सोचने का अवसर मिलेगा कि छन्द क्या वस्तु है?

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः।। यजुर्वेद १४.१६

पदार्थः– (पृथिवी) भूमिः (छन्दः) स्वच्छन्दः (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (छन्दः) (द्यौः) प्रकाशः (छन्दः) (समाः) वर्षाणि (छन्दः) (नक्षत्राणि) (छन्दः) (वाक्) (छन्दः) (मनः) (छन्दः) (कृषिः) भूमि विलेखनम् (छन्दः) (हिरण्यम्) सुवर्णम् (छन्दः) (गौः) (छन्दः) (अजा) (छन्दः) (अश्वः) (छन्दः)।।

यह कैसा भाष्य है जिसमें अनेक पदों का शब्दार्थ मात्र भी नहीं दिया। **क्या जल्दबाजी थी? उनके पास हम लोगों के समान एक स्थान पर बैठकर भाष्य करने की परिस्थिति नहीं थी। कहीं भी 4–5 माह से अधिक शायद नहीं ठहरे। अनेक काम थे, अनेक चिन्तायें थीं, अनेक ओर से उन्हें मारने के षड्यन्त्र हो रहे थे। इस कारण विस्तृत वेद भाष्य का संकल्प लेकर चलने पर भी महर्षि वेद भाष्य पूर्ण न कर सके। जो किया वह भी कहीं–2 बहुत संक्षिप्त अस्पष्ट रह गया। उन्हें अपनी अल्प आयु का सम्भवतः पूर्वाभास हो गया था। क्या कोई विद्वान् महर्षि के सम्पूर्ण वेद भाष्य को समझने का दावा करता है? स्मरण रहे कि हिन्दी भाष्य महर्षि** का नहीं है। यदि उसे भी महर्षि का मानकर प्रमाण माना गया तो सूर्य में भेड़ बकरियों का होना भी मानना पड़ेगा। इसके लिए देखें, मेरी पुस्तक **"सत्यार्थ प्रकाश – उभरते प्रश्न, गर्जते उत्तर"**। क्या आप सूर्य में भेड़, बकरियों का होना मानेंगे? **यह पुस्तक भी सत्यार्थ प्रकाश पर उठाये गये उन गम्भीर प्रश्नों का समाधान है, जिसके लिए आप और आपकी सभा कभी साहस नहीं कर सकी। पं. ईश्वरदयालु आर्य ने आपकी सभा को "सूर्य में प्राणी हैं", इस विषय पर शास्त्रार्थ के लिए ललकारा तब आप एवं आपकी सभा के पण्डित लोग कहाँ गये थे, आप सबकी ऋषि भक्ति कहाँ थी? आपके सभा प्रधान श्री गजानन्द जी आर्य को चुनौती देते हुए सत्यार्थ प्रकाश एवं आर्य समाज पर तीखे व्यंग्य प्रो. वन्दिता अरोड़ा ने किये थे, तब आप लोग कहाँ थे? आपकी ऋषि भक्ति कहाँ थी? तब डा. भवानीलाल जी भारतीय के आग्रह पर मैंने ही आप लोगों की लाज बचायी थी।** मेरे लेख से न केवल उस लेखिका को करारा उत्तर मिला अपितु 'आर्य जगत्' जिसमें प्रो. अरोड़ा का लेख छपा था, के सम्पादक श्री उदयवीर विराज को भी अपने पद से हाथ धोना पड़ा था, परन्तु न तो सभा और न श्री गजानन्द जी आर्य ने कभी इस उपकार को माना। **एक युवा मौलवी आपका शिष्य बनकर व्याकरण पढ़ता हुआ महर्षि पर कटाक्ष करता था, तब आपका साहस व ऋषि भक्ति कहाँ थी? तब मैंने ही श्री सत्येन्द्र जी आर्य (उपाचार्य) तथा ब्रह्मचारियों के आग्रह पर उसकी खिंचाई की। अन्ततः वह ऋषि उद्यान छोड़ने पर विवश हुआ। आपने कहाँ, किससे, कब लोहा लिया है? आज ऋषि भक्ति का इस कारण अतिशय प्रदर्शन कर रहे हो कि आर्य जन आपको ऋषि–भक्त तथा मुझे ऋषि विरोधी मान कर सहयोग बंद कर दें। हर अर्थ में महर्षि का प्रमाण मांगने वाले आप जैसे विद्वान् वास्तव में महर्षि जी के साथ अत्याचार व अन्याय कर रहे हैं। उदाहरणतः यदि कल्पना करें कि मेरा ऐतरेय भाष्य जो अभी रफ रूप है और मैं किसी कारणवश इसे पूर्ण न कर पाऊं तथा मेरे अनुयायी मेरे पीछे इसी भाष्य को**

अन्तिम मानकर उसी को ऐतरेय विज्ञान की सीमा घोषित कर दें, तो यह मेरे तथा ऐतरेय ब्राह्मण के विज्ञान के साथ अन्याय होगा। यही अन्याय आज लोग वेद तथा महर्षि के प्रति कर रहे हैं। क्या आपको उन दों मंत्रों का भाष्य समझ में आ रहा है, क्या ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा ने इसमें कोई महत्वपूर्ण विद्या का प्रकाश किया है? वस्तुतः आप महर्षि की भावना व भाषा दोनों से कोसों दूर हैं। मैं एक उदाहरण और देता हूँ–

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।। सामवेद।

इस मंत्र में महर्षि ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में बीजगणित विद्या का होना माना है। यह मंत्र भी गणित विद्या विषय में उद्धृत किया है। सामवेद का ही पता दिया है। सत्यजित् जी! बताइये कि सामवेद में गणित विद्या वह भी प्रथम मंत्र में ही, क्या कहीं किसी ने दर्शायी है? **क्या आप लोगों में यह साहस है कि इस मंत्र में गणित विद्या सिद्ध करें।** महर्षि ने इसी मंत्र के ऋग्वेद ६.१६.१० भाष्य में इसका व्यवहारिक अर्थ करते हुए विद्वानों के कर्तव्य बताये हैं। सामवेद को तो उपासना काण्ड का वेद माना जाता है। कहें, गणित विद्या कहाँ से आ गयी? **इसी प्रकार ऐसे कितने मंत्र होंगे जिसका महर्षि ने केवल व्यवहारिक कर दिया लेकिन उनके मन में उन मंत्रों के आधिदैविक (वैज्ञानिक) अर्थ भी थे परन्तु समयाभाव के कारण वे नहीं कर सके।** यदि 'अग्न आ याहि ....' मंत्र में गणित विद्या की बात वे अपनी भूमिका में न करते तो, कोई विद्वान् इस मंत्र में गणित विद्या होने की बात सोच भी नहीं सकता था। कम से कम सत्यजित् जी एण्ड कम्पनी तो स्वप्न में भी नहीं। यदि मेरे जैसा कोई इसमें गणित विद्या की खोजा करता आपका गुट उस पर जम कर प्रहार करता। **तब क्या इससे सर्वथा स्पष्ट नहीं होता है कि महर्षि के वेद भाष्य हमारे लिए संकेत मात्र हैं। वे पूर्ण व स्पष्ट नहीं हैं। उन्हें तो संसार ने विष देकर मिटा दिया, तब हम उनके अनुयायी तो जीवित हैं। आपकी सभा तो सर्वसाधन सम्पन्न है।** कोई संकट आप वा हमारे सामने नहीं है। मेरे सामने तो आर्थिक समस्याएं भी हो सकती हैं परन्तु आपकी सभा तो धनकुबेर है। **अतः आप लोग क्यों महर्षि के संकेतों के अभिप्राय को समझकर वेदों के आधिदैविक (वैज्ञानिक) अर्थ करने का प्रयास करते? क्यों वेदार्थ के लिए महर्षि के अर्थों तक सीमित रहने के मूर्खता–पूर्ण तर्क देते हैं? क्या महर्षि के विद्यमान अर्थों से उन्हीं की भावना के अनुसार 'अग्न आ याहि ....' मंत्र से गणित विद्या कोई माई का लाल सिद्ध कर सकता है। यदि हो भी जाये तब क्या सभी वेद मंत्रों के भाष्यों को बिना अन्य आर्ष ग्रन्थों के सहारे कोई समझने का दावा कर सकता है? यदि नहीं तो आपने ईर्ष्या व वैर भावनावश हर बार एक ही हठ क्यों दोहराई कि अमुक शब्द का महर्षि ने अमुक अर्थ कहाँ किया?** आपके लेख का अधिकांश भाग तो इसी व्यर्थ व ईर्ष्याजन्य हठ से भरा है। आप व आपके साथी विद्वान् जिस प्रकार वेद के रूढ़ार्थ के कूप में पड़े हैं, उसी कूप में क्या आचार्य सायण आदि नहीं पड़े थे? **क्या उसी कूपमण्डूपता के कारण ही वेद व आर्ष ग्रन्थों में से अश्लीलता, लम्पटता, मांसाहार, गोहत्या, मदिरापान, पशुबलि, नरबलि आदि पापों को संसार में प्रसिद्ध नहीं किया?** इसी पाप से बचाने हेतु पापमोचक भगवान् दयानन्द इस धरती पर आये। इन्हीं पापों से लड़ते–2 अपने शरीर को आहुत कर दिया। वेद के यौगिक अर्थ की प्रणाली बतायी। वेदार्थ की एक परम्परा भी पुनः स्थापित की परन्तु शोक है कि ये पाप न तो पौराणिकों ने मिटाने को प्रयास किये और न महर्षि के नाम की जयकार लगाने वालों ने अपने सम्पूर्ण साहित्य से मिटाया। **जब मैंने पत्रों द्वारा इन पापों को मिटाने हेतु सभाओं, विद्वानों को जगाने की प्रार्थना की तो मुझ पर यह वैचारिक आक्रमण निर्लज्जतापूर्वक किया गया। अश्लीलता को विज्ञान बताकर अश्लीलता का पक्ष लिया गया। मांसाहार, पशुबलि आदि पापों पर मौन साधा गया। क्या यह महर्षि के आत्मा व उनके महान् यश की हत्या नहीं है?** आश्चर्य है कि ऐसी क्रूर हत्या करते हुए भी मुझे महर्षि के विरुद्ध मान्यता बनाने वाला ठग बताने का पाप किया गया। सत्यजित् जी! आपने कितने ऋषि विरोधियों का मानमर्दन करने का साहस इस सम्पूर्ण जीवन में किया है? ऋषि मेला, ऋषि उद्यान वा आस्था चैनल के माध्यम से मधुर–2 बातें बनाना तथा वेदादि गोष्ठियों में 'अहोरूपमहोध्वनिः' के गीत गाकर अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना ही तो एक मात्र लक्ष्य रहा है। कभी हमारी भाँति सार्वजनिक स्थलों पर इस्लाम, पुराण वा किन्हीं राष्ट्र विरोधी संगठनों के विरुद्ध बोल कर दिखायें, तब ज्ञात होगा कि आप कितने योगी, साहसी, विद्वान् ऋषि भक्त हैं? मैं आपकी वीरता व पाण्डित्य को जानता हूँ। **सबकी आँखों की लाज बचाने वाले मुझको ही आँख दिखाने चले? मुझसे ही विज्ञान की जानकारी लेते रहने वाले मुझे ही विज्ञान बताने चले?** यह आपके संकीर्ण गुट में ही सम्भव है। मेरे स्वभाव में ऐसा नहीं है। **सत्यजित् जी! आपने व्याकरणादि शास्त्र मुझसे अधिक पढ़े हैं, संस्कृत भाषा में भी आपकी**

मेरी अपेक्षा अधिक गति हैं, यह मैं मानता हूँ। व्याकरण की कोई त्रुटि भी मुझसे हो सकती है परन्तु व्याकरण, निरुक्त, दर्शनों का आशय व प्रयोजन समझने में आपकी कोई गति नहीं है। आपको स्मरण होगा, जब आप सभी मीमांसा दर्शन पढ़कर के आये थे, उस समय मेरा ऋषि उद्यान आना हुआ था। शायद मैं उस समय मथुरा जाते हुए मार्ग में रुक गया था। उस समय आप सहित कई वैयाकरण, दर्शनाचार्य, निरुक्ताचार्य व मीमांसकों को सम्बोधित करते हुए मैंने 'वायवा याहि दर्शतेमे ....' ऋग्वेद १.२.१ को उद्धृत करते हुए बतलाया था कि क्यों व्याकरण के विद्वान् व्याकरण का उपयोग कर वेदार्थ की वैज्ञानिकता नहीं समझ पाये? मैंने इस मंत्र का महर्षि भाष्य ही उद्धृत किया था और बताया था कि केवल व्याकरण, निरुक्त के रट लेने से यह भाष्य नहीं हो सकता। 'वायुः' शब्द कैसे बना है, यह व्याकरण बता सकता है। इसका निर्वचन भी निरुक्त कर सकता है परन्तु 'वायु' शब्द का स्वरूप उसके गुण कर्म स्वभाव बताने के लिए **व्याकरणादि शास्त्रों के साथ एक दिव्य दृष्टि चाहिए, प्रभु प्रदत्त प्रतिभा चाहिए। जो आपके पास किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। इस कारण आप वेदार्थ करने में बालक के समान हैं, इस सत्य को समझने का प्रयास करें। परमात्मा की महती कृपा से सम्पूर्ण ऐतरेय ब्राह्मण के व्याख्यान में मुझे प्रायः कहीं भी सायणाचार्य की नकल नहीं करनी पड़ी। प्रायः कहीं संगति की समस्या नहीं आयी।** एकबार प्रिय डॉ. मोक्षराज जी ने पूछा, "आचार्य जी! आपकी संगति कैसे लग जाती है? कैसे भाष्य करते हैं?" मैंने कहा, पिछली कण्डिकाओं की संगति अगली से लगती चली जाती है। अगली कण्डिका से संगति लगाने का कभी प्रयास ही नहीं किया। **पता नहीं, ईश्वर कैसे स्वतः संगति बिठाता जाता है? कभी–2 किसी शब्द का अर्थ व निर्वचन वा भाव आदि मन से लगाकर आगे बढ़ जाता हूँ। कई बार प्रभु कृपया मेरा अर्थ व भाव ऐतरेय वा अन्य किसी ग्रन्थ में स्वतः ही मिल जाता है। मेरे प्रभु ने सदा मेरी लज्जा रखी है। बस इसी कृपाबल से ही मेरा मार्गप्रशस्त होता गया है और आशा है, होता जायेगा भी।** सत्यजित् जी! मेरे ऊपर ईश्वर की जो कृपाजन्य ऊहा है, वह शास्त्रों तथा वर्तमान विज्ञान को गहराई से समझने का अभीष्ट बल प्रदान करती है। **वह ऊहा किसी के सिखाने, पढ़ाने वा धन–सम्पत्ति व उच्च टैक्नोलॉजी से नहीं आती। क्या सायण, महीधर आदि आचार्य वैदिक वाङ्मय नहीं पढ़े थे? क्या उनको व्याकरणादि शास्त्र उपस्थित नहीं थे? यदि हाँ, तो क्यों वे महर्षि दयानन्द जी के समान शास्त्रों का मर्म समझ नहीं सके? यह अन्तर था उनमें और महर्षि दयानन्द जी में।** आपने कभी सोचा? आप कितने ऋषि भक्त व कब से हैं, मैं जानता हूँ। आपको मुझे ऋषि की प्रामाणिकता पत्र द्वारा समझानी पड़ी थी, जुलाई 1999 में। तब आप ऋषि उद्यान में थे। आपको ऋषि दयानन्द जी पर तो क्या, पातंजल योगदर्शन से भी पूर्ण तृप्ति नहीं थी, इसी कारण लाडनूँ में शायद तीन माह प्रेक्षा ध्यान सीखने गये थे। उस समय मैं ऋषि उद्यान में ही रहता था। आप साम्प्रदायिक पाखण्डी सन्तों के व्याख्यान सुनने कदाचित् कहीं गये भी हों परन्तु **क्या मुझे कभी आपकी भाँति भटकते किसी ने देखा है? जिसने अति संकट समय में भादरिया जी महाराज के लाखों–करोड़ों के प्रस्ताव को ठुकराते हुए लिखा था, "चाहे चन्द्रमा अपनी शीतलता छोड़ दे, सूर्य अपना तेज छोड़ दे, पृथिवी अपनी गुरुता छोड़ दे परन्तु मैं आर्य समाज के सिद्धान्त कभी नहीं छोड़ सकता ...." उस ऐसे अग्निव्रत की ऋषि निष्ठा पर व्यंग्य करके आर्यों को भ्रमित करने का पाप आप कर रहे हैं और जैन साधना सीखने आदि में समय व्यर्थ गंवाने वाले आप ऋषि भक्त हो गये?** यही योग साधना व अध्यात्म चिन्तन आपका है।

आपकी शास्त्र–शास्त्र की रट परन्तु शास्त्र क्या व क्यों कहता है, यह पता ही नहीं है। यदि यही पता होता तो वेदों की विद्या इस भूमण्डल पर छा रही होती। आर्य समाज को भी स्थापित हुए लगभग 138 वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु महर्षि के अनुरूप वेदों के विज्ञान को संसार में प्रतिष्ठित करना तो दूर स्वयं मैकाले की शिक्षा के क्रीत दास तथा सायणादि की अंधी गलियों में भटकने वाले कर्मकाण्डी वा वाक्पटुता से दक्षिणादक्ष पण्डित बन गये।

सत्यजित् जी लिखते हैं–

"जो कुछ वैज्ञानिक उनका समर्थन कर रहे हैं, उन्हें क्या पता कि ये वेद या वैदिक साहित्य के शब्दों के साथ कैसा खिलवाड़ कर रहे हैं? वैज्ञानिकों को संस्कृत नहीं आती, न वैदिक परम्परा की समझ है। उन्हें इनकी भूमिका व पृष्ठभूमि की वास्तविकता का आभास तक नहीं हो सकता, पर सत्य कब तक छुपा रह सकता है? ....

इस प्रकार की भाष्य शैली से कभी भी वेद में विज्ञान सिद्ध नहीं हो सकता, उलटा वेद व वेदानुयायियों का उपहास होगा। हाँ, इससे हम अपनों के बीच अपनी पीठ ठोक व ठुकवा कर सन्तुष्ट हो

सकते हैं, अस्वाध्यायशीलों के बीच अपने भाष्य को महर्षि के नाम का आवरण चढ़ाकर अपने कुछ प्रयोजन सिद्ध कर सकते हैं, परन्तु ईश्वर व अन्य ज्ञानी समझदारों की दृष्टि में ऐसी भाष्य शैली महत्वहीन है।''

(10) वेद का अपमान वा सम्मान

उत्तर :— वास्तव में आप सर्वथा वैर भावना पर उतर आये हैं। तामसवृत्ति का इतना प्राबल्य अध्यात्म के चिन्तक में कहाँ से आ गया? वैज्ञानिकों को संस्कृत सिखाने की आवश्यकता ही कहाँ है? **यदि मैं किसी डॉक्टर के पास चिकित्सा हेतु जाऊँ तो डॉक्टर कहे कि आपके अंग्रेजी भाषा व मैडीकल सायंस आती नहीं, तब कैसे चिकित्सा करूँ? इसके बिना आप मैडिकल सायंस तथा मुझे उपहास का पात्र बनाओगे। इसी प्रकार वैद्य संस्कृत व आयुर्वेद के ज्ञान की शर्त रखे, तब तो चिकित्सा होगी ही नहीं। अरे महोदय! मैं वैज्ञानिकों के द्वारा वर्तमान विज्ञान समझ कर और वर्तमान विश्व के उच्चतम विज्ञान का रोग अर्थात् अनसुलझी समस्यायें क्या हैं, यह जानकर उनका समाधान अपने वैदिक विज्ञान से कर दूँ, तो इसमें वेद अथवा वैदिक विद्वानों का उपहास कैसे होगा?** ऐसी अपूर्व प्रज्ञा तो सम्भवतः आपको समाधि में ही प्राप्त हुयी होगी, अति सुन्दर। आप लोगों से योग सीखने वालों की विवेकख्याति विश्व में चमत्कार अवश्य करेगी। मैं उन वैज्ञानिकों को वैदिक विज्ञान थोड़े ही पढ़ा रहा हूँ। जिस प्रकार डॉक्टर रोगी को पढ़ाता नहीं बल्कि समस्या का समाधान करता है, उतना ही काम मेरा है। **आश्चर्य है कि 138 वर्ष से हम वेद को आर्य समाज की दीवारों के अन्दर केवल यज्ञादि करने तक सीमित कर देने में लगे रहे। प्रवचन देकर दान दक्षिणा से अपने कोष भरते रहे। ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'' ऐसा केवल गीत गाते रहे। हम विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के संस्कृत विभागों तक ही वेद की प्रशंसा के मिथ्या गीत गाते रहे। हमने आज तक कोई विद्या विशेषकर पदार्थ विद्या किसी विज्ञान संकाय में नहीं बतायी। हमें विज्ञान का कोई ज्ञाता, नास्तिकता का दम्भी, तथाकथित प्रगतिशीलता का अहंकारी तिनके के समान समझकर उपहास करता रहा और हम आत्ममुग्धता में मस्त रहे। मठाधीशों की भाँति ऐश्वर्य भोगी बने, मात्र धन यश के लोभ में विदेश यात्राएं करते रहे। अपने बच्चों को अंग्रेजी विद्यालयों में पढ़ाने में गौरव मानते रहे। उधर, मैं अपनी वेद की बात को, महर्षि दयानन्द जी की चर्चा को भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुम्बई, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेण्टल रिसर्च, मुम्बई के प्रख्यात वैज्ञानिकों तथा अन्य कुछ विश्वस्तरीय वैज्ञानिकों के बीच ले गया। उन्हें प्रथम बार किसी ने यह बताने का प्रयास किया कि वेद व ऋषि दयानन्द के द्वारा वर्तमान विज्ञान की कुछ गम्भीर समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। ये वैज्ञानिक मेरे विषय में क्या मानते हैं, यह आप कभी नहीं समझेंगे और न मुझे आपको समझाने की आवश्यकता है। ये सभी वैज्ञानिक मेरे भाष्य के पूर्ण होने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं और आपकी दृष्टि में मेरा कार्य बड़ा अनर्थकारी है? आश्चर्य!**

सूर्य के केन्द्रीय भाग में त्रिज्या को मैं अपने ऐतरेय के रफ व्याख्यान के आधार एकदम निश्चित बता सकता हूँ और उन वैज्ञानिकों को बतायी भी है, जबकि विज्ञान औसत में बात करता है। ऐसे और भी कई बिन्दु हैं, अभी आगे देखें, क्या होता है? **विज्ञान के पास संसार के सभी संसाधन हैं, उनका बड़ा नेटवर्क है, उनके पास स्पष्ट साहित्य हैं, प्रयोगशालाएं हैं, अत्युच्च स्तरीय गणित है और मेरे पास हैं आप जैसे टांग खींचने वाले, अकारण शत्रुता मानने वाले, महाशय! आप इसे मेरी ऊहा का परिणाम कहेंगे। मैं पूछता हूँ कि आप बड़े साधक हैं, योगी हैं, आपमें ऊहा क्यों नहीं है? ऊहा को महर्षि यास्क ने ब्रह्म कहा। वह ब्रह्म आपके पास क्यों नहीं आकर फटकता? क्यों मोटी बुद्धि बना रखी है?** आश्चर्य है, आप योगी हैं, सकल शास्त्र निष्णात हैं, आपका एक सुदृढ़ संगठन है। तब भी आप कुछ भी किसी विज्ञानी को बताने का सामर्थ्य नहीं रखते। मैं केवल ऊहा के बल पर विज्ञान को नई दिशा देने की बात करता हूँ, तो भी मैं शास्त्रों का उपहास कराने वाला हो गया? **शास्त्रों में अश्लीलता, मांसाहार, पशुबलि बताने वाले वेदों के प्रतिष्ठापक हो गये और शास्त्रों से विज्ञान की ऊँचाइयां छूने का प्रयास करके सम्पूर्ण विश्व में शास्त्रों की महत्ता सिद्ध करने का व्रती शास्त्रों को नष्ट करने वाला हो गया? यदि मैं यह सिद्ध कर दूँ कि ऐतरेय वा वेद में ऐसा विज्ञान है जिससे विज्ञान को नई दिशा मिल जाये, फिर विश्व बिना किसी भेद भाव के शास्त्रों को पढ़ने में रूचि दिखाने लगे। शास्त्रों पर लगा साम्प्रदायिकता का आरोप समाप्त हो जाये, भारत के प्राचीन विज्ञान का चमत्कार सबको दिख जाए, तब इससे शास्त्रों का उपहास कैसे होगा?** अरे महाभाग! शास्त्रों का उपहास तो आज हो रहा है। शास्त्रवेत्ता कहाने वालों के बच्चे ही शास्त्रों का उपहास कर रहे हैं। आज की राजनीति, शिक्षा, समाज, मीडिया, विज्ञान सभी शास्त्रों का उपहास कर रहे हैं और आप लोग अपनों की टांग खींचने

का काम कर रहे हैं। आप स्वयंभू वेदज्ञों व जन्मजात योगिजनों को ज्ञात नहीं कि आज न केवल वैदिक धर्म संस्कृति का अपमान हो रहा है, उस पर गम्भीर संकट ही नहीं, उसे मृतप्राय कर दिया गया है अपितु ईश्वर अस्तित्व को भी वैज्ञानिक जगत् तथा उनके पिछलग्गू मीडिया व कथित प्रबुद्ध समाज द्वारा चुनौती दी जा रही है। कुछ वर्ष पूर्व 'आर्य जगत्' पत्रिका में विज्ञान के एक अध्यापक अजय शर्मा (शायद यही नाम था) ने जड़ ऊर्जा को ही ईश्वर बताकर वैदिक ईश्वरवाद का प्रबल खण्डन किया। तब आप आँखें बंद कर योग के नाटक करने में व्यस्त थे। आपके डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी (मनुस्मृति भाष्यकार) ने मुझे कहा, ''नैष्ठिक जी! आप इस लेख का उत्तर दें। हम नहीं दे सकते। इसने तो हमारे आधार को ही समाप्त कर दिया।'' तब मैंने ही उसका उत्तर दिया था जो शायद आपकी परोपकारी में **'थोथा चना बाजे घना'** नाम से एक लेख लिखा था, जिससे अजय शर्मा निरुत्तर हुए तथा मुझे पत्र लिखकर मेरे साहित्य को पढ़ने की इच्छा की। क्या वेद का उपहास मैंने कराया अथवा आप जैसे मूकदर्शक लोग करा रहे थे? वर्ल्ड कांग्रेस ऑन वैदिक सायंसेज, बंगलौर 2004 में हमने वेद का उपहास कराया था वा गौरव बढ़ाया था, यह अपने गुरु रहे आचार्य वेदव्रत जी, शाहबाद, मारकंडा, से ही पूछ लेना। पिछले कुछ समय पूर्व स्टीफन हॉकिंग द्वारा लिखित पुस्तक 'The Grand Design' में ईश्वर व जीव दोनों के अस्तित्व को गम्भीर चुनौती दी गयी ।इन पर तीखे व्यंग्य किए गये। मीडिया ने इस मामले को खूब प्रचारित किया। मेरे पास अनेक फोन आये परन्तु आप लोगों की योग निद्रा भंग नहीं हुई। **संसार की आसुरी शक्तियां हमारे सिद्धान्तों की चिता जलायें, हमारे इतिहास को नष्ट करें परन्तु आप मौनव्रती होकर अपने–2 उल्लू सीधे करते हुए अपने अन्ध श्रद्धालुओं को बहकाने में ही लगे रहते हैं परन्तु यदि कोई अपना ही भाई आपसे तनिक भी हट कर कोई बात करता है, तो आप उस पर टूट पड़ते हैं। बारी–2 से महारथी बदल–2 कर लेख लिखते हैं।** मैं वैज्ञानिकों में जाता हूँ, उनसे निकट चर्चा होती है, उनके गम्भीर साहित्य को पढ़ता हूँ। मैं जानता हूँ कि ईश्वर विश्वास पर गम्भीर संकट है। समूचा विज्ञान अनीश्वरवाद की ओर बढ़ रहा है। वैदिक मत का नामोनिशान भी उनके साहित्य वा विचारों में नहीं है। तब वेद के ईश्वरीयता के तो कोई स्वप्न भी नहीं देख सकता। **इस गंम्भीर परिस्थिति में मेरे आप जैसे भाइयों को कोई चिन्ता ही नहीं है और जन्म से विभिन्न रोगों से लड़ते रहने वाले, विधर्मियों द्वारा विष दिये जाने से अब तक दुर्बलकाय एवं अत्यल्प संसाधन वाले मैंने न केवल समूचे आर्य जगत्, वैदिक, पौराणिक जगत् अपितु संसार भर के ईश्वरवादियों (सिख, ईसाई, इस्लामी आदि) एवं केवल जीव मानने वाले जैन, बौद्ध आदि मत वालों का भार अपने निर्बल कन्धों पर लेकर न केवल ईश्वर अस्तित्व को वर्तमान विज्ञान से निकट से जोड़ने के महान् चिन्तन व योजना को लेकर एकाकी चल रहा हूँ अपितु ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता व वह ज्ञान वेद ही है तथा वह सब सत्य विद्याओं का मूल भी है, ऐसा महत्तम व्रत लेकर भी चला हूँ। जरा विचारो, मेरे भाई! सारे विश्व के आस्तिकों विशेषकर ईश्वरवादियों की सबसे बड़ी समस्या का भार उठा कर चलने वाला मैं क्या किसी आस्तिक द्वारा क्लेशित करने के योग्य हूँ? और फिर क्या कोई निष्पक्ष सरलमना यह सोच भी सकता है कि मेरा विरोध कोई आर्य विद्वान् करेगा? सोचो, आत्मा से सोचो, आप क्या अनर्थ कर रहे हैं? क्या ईश्वर की सत्ता को चुनौती मिलने व उस चुनौती को संसार की मान्यता मिलने से धर्म वा सम्प्रदाय बच सकेंगे? आपके यज्ञ, योग, वेद बचेंगे? बोलो! आप इसके लिए क्या कर रहे हैं? क्या कुछ भी सोच आपके पास इस विषय में हैं?**

मेरे आर्य विद्वानो! मैं तो आप सबका एक चौकीदार बनने की दिशा में आगे बढ़ रहा हूँ। जब कोई नास्तिक, अहंकारी, वैज्ञानिक, कथित प्रगतिशील शिक्षाविद् आपके शास्त्रों पर व्यंग्य करेगा, भारतीय इतिहास व संस्कृति का उपहास करेगा, उसे व्यर्थ समझ कर नष्ट करने का प्रयास करेगा, आपके योग, यज्ञ को पाखण्ड कहेगा, **तब यह अग्निव्रत दीवार बनकर उनसे आप सबकी रक्षा करेगा। विज्ञान के अस्त्र को विज्ञान से ही कटेगा। आप मेरी सुरक्षा में रहकर भले ही अपने आश्रमों में बैठकर अपने कार्यक्रम निर्विघ्न चलाते रहना। मेरी योजना तो यह है परन्तु आप तो मुझ चौकीदार के पीछे ही लट्ठ लेकर पड़ गये हैं। आप चौकीदार को ही समाप्त करना चाहते हैं। तब देश व धर्म का प्रभु ही रक्षक है। आर्य समाज का भविष्य अन्धकार में ही है।** सत्यजित् जी! आपने मेरे लेख की समीक्षा कम, प्रूफ रीडिंग अधिक की है। इसके लिए भूरिशः धन्यवाद। **समीक्षा करने की योग्यता तो आपकी है भी नहीं। आप न चर्चा के योग्य हैं और न लेखन द्वारा संवाद के।** मैं आपको ऋषि उद्यान में रहकर खूब परख चुका हूँ। अब तो आपको सर्वथा उपेक्षणीय विद्वान् मानता हूँ। आपका हठ, अहंकार व ईर्ष्या सब कुछ चरम पर है। आप अपने को बहुत बड़ा विद्वान्

मानते हैं, सो माने। मैं स्वयं को आप सबका चौकीदार ही बता रहा हूँ। तब तो झगड़ा समाप्त करें। चौकीदार से झगड़ने में आपकी शान थोड़े ही बढ़ेगी। ईश्वर आपको सुमार्ग पर चलाये।

लेख के अन्त में सत्यजित् जी लिखते हैं–

''मैं चाहता था कि इन्हें प्रेम से समझाया जाए कि आप किस शैली से चल रहे हैं, उसमें आपको अपना लक्ष्य पूरा करने में सफलता नहीं मिलेगी। आपका इतना पुरुषार्थ व आर्य जनता का सहयोग व्यर्थ हो जायेगा। आत्म–गौरव, आत्म–स्वाभिमान से स्वयं में सन्तुष्ट क्यों नहीं रह पा रहे हैं? अपने को सर्वोच्च वैदिक शोधकर्ता सिद्ध करने के लिए वैसाखियों की चाह क्यों है? अग्निव्रत जी नैष्ठिक की मेहनत–लगन प्रशंसनीय है, किन्तु उन्होंने दिशा गलत पकड़ ली है। उन्होंने आर्य समाज का बहुत कार्य किया है...... अच्छा हो कि वे अपनी वेदभाष्य शैली का पुनरावलोकन कर लेवें ....।''

(11) अन्तिम वक्तव्य

उत्तर :– सत्यजित् जी जिस गुट से सम्बंध रखते हैं, (आर्य समाज में भी कुछ गुरुडम, गुट वा सम्प्रदाय चल पड़े हैं) उसमें इस बात का प्रशिक्षण सुन्दर रीति से दिया जाता हैं कि कैसे विनम्र भी दिखाई दो, साथ ही अपने को सर्वोच्च भी मानते रह कर अगले व्यक्ति को अपने से हीन समझकर उसे उपदेश देने की ही मुद्रा में रहो। ईश्वर, मुक्ति, आत्मा से नीचे कोई बात नहीं करो कि जिससे अगला व्यक्ति तर्क–युक्ति व व्यवहार को गौण मान कर अन्धभक्त बन जाये। **इसी शैली से ही पौराणिक मठाधीशों की भी दुकानदारी अच्छी चल रही है, वही पद्धति यहाँ भी फलीभूत हो रही है।** मैं तो प्रभूकृपया बचपन से ही किसी अभिनय से कभी प्रभावित होता ही नहीं और न धन, यश, पद, भीड़ का कोई प्रभाव मुझ पर कभी पड़ता है। मैं केवल सत्य से प्रभावित होता हूँ, जो केवल महर्षि की शैली से ही जाना जा सकता है। सत्यजित् जी! महर्षि ने भी वेद भाष्य के नमूने भारत भर के विद्वानों को सम्मत्यर्थ भेजे थे, इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन्हें उन विद्वानों की वैसाखी की आवश्यकता थी। मैंने भी वही किया जो मेरे ऋषि ने किया। मैंने सोचा कि कोई गम्भीर प्रश्न आयें, तो ऐतरेय भाष्य भूमिका में उनका समाधान करूंगा परन्तु प्रश्न आए तो केवल आपके वे भी नितान्त व्यर्थ अथवा मुद्रण दोष। आपको स्वयं वेदभाष्य शैली की वर्णमाला पता नहीं और स्वयं ही मुझे समझाने के अधिकारी बन कर समझाने आने की इच्छा रखते थे? आपके यहाँ लगभग सवा करोड़ रुपये की लागत से अनुसंधान भवन बना है। इसकी पोल जब पौराणिक ज्ञान–पिपासु श्री प्रफुल्ल भाई पण्ड्या (भावनगर, गुजरात) ने डॉ. धर्मवीर जी के सामने ही खोली अर्थात् वहाँ होने वाले अनुसंधान की जानकारी चाही तो डॉ. धर्मवीर जी को आर्य समाज की ही नाक कटती दिखाई दी तब आप जैसे वेदज्ञ, योगी महात्मा उन्हें याद ही नहीं आए और मुझ गलत शैली वाले अग्निव्रत के पास ही पण्डया जी को भेजने को विवश हुए। **यदि आपके पास सही शैली है तो क्यों नहीं कभी मुझे भेजी? क्यों नहीं कभी लेख लिखा? क्यों नहीं किसी ग्रन्थ का वैज्ञानिक भाष्य करने का साहस करते? मैंने ऐतरेय ब्राह्मण को लिया है, आप शतपथ ब्राह्मण को ले लो।** कितना अच्छा रहे? गुरुमुख से पढ़ा वैशेषिक दर्शन ही ले लीजिये। इससे ही कोई पदार्थ विद्या निकाल कर संसार को दे दीजिए। आपके साथी स्वामी विवेकानन्द जी परिव्राजक लिखते हैं कि उन्होंने वैशेषिक दर्शन 125 बार पढ़ा है। उनका मार्ग दर्शन लीजिए परन्तु कुछ गम्भीर विद्या संसार को देने की ओर कुछ कदम तो रखिये। परन्तु आप कोई भी ऐसा कार्य नहीं करेंगे। परोपकारिणी सभा बनी बनाई मिल गयी। उसमें रहकर राजनीति करना, किसी को नीचा दिखाना, स्वंय को योगी, वेदज्ञ आदि सिद्ध करने का प्रयास करना, यही तो एक मात्र कर्तव्य रह गया है। जिस शैली पर आपने व्यंग्य किए है उसी की प्रशंसा दिवंगत विद्वान् डॉ. आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र, डॉ. आचार्य सत्यव्रत जी राजेश एवं जीवित विद्वान् आचार्य राजवीर जी शास्त्री (आर्ष साहित्य प्रचार ट्रष्ट), डॉ. रघुवीर जी वेदालंकार, आचार्य वेदप्रकाश जी श्रोत्रिय, स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, डॉ. आचार्य जयदत्त जी उप्रेती, प्रो. रुपकिशोर जी शास्त्री, डॉ. प्रशस्यमित्र जी शास्त्री आदि कर चुके हैं वा कर रहे हैं, आप इन सबको ही मूर्ख मानते हैं, जो मुझे अनपढ़, गंवार सिद्ध करके पढ़ाना चाहते हैं? धन्य हो।

आपकी दृष्टि में जब तक मैं आपकी सभा की लाज बचाने हेतु लेख लिखता था, तब तक मैंने आर्य समाज की सेवा की और जैसे ही एक स्वतंत्र न्यास बनाकर एक ऐतिहासिक लक्ष्य पर चला, जिस पर आपकी दृष्टि भी नहीं पहुँच पा रही, तभी अकस्मात् मेरी दिशा बदल गयी? **वस्तुतः जब से मैंने सत्यार्थ प्रकाश विवाद पर अपनी टिप्पणी दी, तब से ही मैं आपका भी निशाना बन गया। इससे पूर्व डॉ. धर्मवीर जी तो भले ही व्यंग्य करते थे परन्तु आप एवं आपके कुछ साथी तो कुछ सहयोग कभी कभी करते ही थे परन्तु**

मुझे ऐसा सहयोग नहीं चाहिए। आप दिल खोलकर विरोध करें, परन्तु मैं सत्य पथ को कदापि नहीं त्याग सकता।

बन्धुवर! मैं तो आज भी चाहता हूँ कि जो भी वैदिक धर्मी व ऋषिभक्त कहाते हैं, वे सभी एक हो जाएं। तीनों सार्वदेशिक सभाएं एक हों, परोपकारिणी सभा महर्षि की सच्ची उत्तराधिकारिणी बने, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, रामलाल कपूर ट्रस्ट, आर्यवन, रोजड़, सभी गुरुकुल, सभी प्रान्तीय सभाएं, डी.ए.वी., वैदिक यति मण्डल, आचार्य परमदेव जी मीमांसक की आर्य निर्मात्री सभा, अनुसंधानकर्ता वैदिक विद्वान्, सभी साधु संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, उपदेशक, भजनोपदेशक, आर्य वीर व वीरांगना दल, स्वामी रामदेव जी एवं आचार्य धर्मबन्धु जी जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व **सभी प्रथम तो स्वयं केवल व केवल वेद व ऋषि भक्त बनें। लोकैषणा व वित्तैषणा के मारे सिद्धान्तों की बलि नहीं चढ़ायें। अपने दोष सर्वप्रथम दूर करें, फिर सभी एक जुट होकर देश व धर्म की रक्षा में जुट जायें। मैं तो सबका वैज्ञानिक सुरक्षा गार्ड बनकर नास्तिक शक्तियों के विरुद्ध सन्नद्ध रहूँगा।** अभी लक्ष्य पाने तक मुझे शान्ति से रहने दें परन्तु मेरा आत्मा कहता है कि अग्निव्रत! यह दिवास्वप्न मत देखो। आज ऋषि नहीं, वेद नहीं बल्कि स्वार्थ, सत्ता, पद, धन, यश व गुटबाजी हावी है। सिद्धान्तों की चिन्ता किसे है? **आज अनेक आर्य विद्वानों को मेरी यह बात भी पच नहीं रही कि वैदिक साहित्य में अश्लीलता, मांसाहार, पशुबलि आदि पाप नहीं है, इससे प्रमाणित है कि आज आर्य समाज के कुछ विद्वान् वा नेता ही महर्षि दयानन्द जी के सिद्धान्तों के हत्यारे बन गये हैं।** जो विद्वान् मेरे विचार से सहमत हैं, उन सच्चे ऋषिभक्त विद्वानों व नेताओं से मार्मिक प्रार्थना है कि इस पाप के विरुद्ध युद्ध के लिए डट जाएं। किसी भी गुट वा शक्ति की चिन्ता नहीं करके अपने अपने आत्मा की आवाज पर शुद्ध के लिए युद्ध का बिगुल बजा दें। इस लेख के उपरान्त भी जो पापों का ही समर्थन कथित एकता के नाम पर करना चाहते हैं, उनसे निवेदन है कि वे स्पष्ट रूप से महर्षि को नकारने की घोषणा कर दें। दोनों नावों में पैर रखना उचित नहीं। **आर्यो! विचार लो कि आपको क्या करना है? मैं इस पाप को कदापि स्वीकार नहीं कर सकता।** प्रभु कृपा करें, मेरा सपना सत्य करने में सभी मिलकर प्रयास करें, तो बड़े आनन्द की बात होगी। **अब आप परोपकारी में कुछ भी लिखकर वैर निकालते रहें, मैं तो सर्वथा निर्वैर रहकर आप सबके मंगल की कामना करता रहूँगा। किसी ने प्रथम बार मेरी योग्यता व काम पर प्रश्न खड़े किये थे, इस कारण यह लेख लिखने को विवश हुआ। अब आपके प्रति तब तक उपेक्षावृत्ति रहेगी जब तक कि आपका अहंकार, हठ दूर होकर मैत्री–मुदिता का भाव नहीं जगाता।** हाँ, एक बात अवश्य गम्भीरता से विचार रहा हूँ कि सन् 2008 में ऋषि मेले के अवसर पर सभा ने जो सम्मान व स्मृति चिन्ह इस न्यास को दिया था, उसे वापिस कर दूँ। आपने स्वयं दूरभाष पर अत्याग्रह करके मुझे सम्मानित करना चाहते थे। आपने इस हेतु अनेक तर्क भी दिये थे परन्तु संकल्पव्रती मैंने वह सम्मान लेने में असमर्थता व्यक्त की थी, तब आपने न्यास को सम्मानित करने की बात कही, जो मुझे आपकी श्रद्धावश स्वीकारनी पड़ी परन्तु अब, जब आपकी दृष्टि में मैं ठग व मिथ्यावादी हूँ, तब मेरे न्यास को आपका सम्मान पत्र व स्मृति चिन्ह रखने का कोई अधिकार नहीं है। न्यास की आगामी बैठक जब भी होगी (सम्भवतः अक्टूबर–नवम्बर 2013) उसमें तब निर्णय किया जायेगा। यह सम्मान किसी योग्य को दे देना। इत्यलं विवादेन।

(३) विकल्प – आपके समक्ष

सूचना— वह पत्र जिसे मैंने अनेकत्र भेजा वा भिजवाया था, जिस पर श्री सत्यजित् जी ने अपना आक्रोश व्यक्त किया है।

सेवायाम्

श्रीमान् महोदय

सप्रेम नमस्ते।

परमेश प्रभुकृपया सर्वत्र सौख्यं भवेदित्येव मे इच्छा। कुशलकामनोपरान्त निवेदन है कि मैं ऋग्वेद १०.८६.१६–१७ मंत्रों के विभिन्न भाष्यकारों के भाष्य से आपको अवगत करा रहा हूँ। सार्वदेशिक सभा के प्रकाशन में इन मंत्रों का भाष्य सार्वदेशिक धर्मार्थ सभा के तत्कालीन अध्यक्ष प्रख्यात वैदिक विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री का उपलब्ध है। परोपकारिणी सभा, अजमेर ने इनका भाष्य तत्कालीन प्रसिद्ध योगनिष्णात वैदिक विद्वान् स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक से कराया था। आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर की ओर से इन मंत्रों का भाष्य चतुर्वेद भाष्यकार श्री पं. जयदेव जी शर्मा, विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ का छापा था। इनमें से श्री शर्मा जी का भाष्य आध्यात्मिक है परन्तु मुझे कुछ असंगत प्रतीत होता है। अन्य दोनों भाष्य आध्यात्मिक (शरीरशास्त्र से सम्बंधित) परन्तु घोर अश्लील, नितान्त अनावश्यक व असभ्यतापूर्ण प्रतीत होते हैं। इन दोनों ही विद्वानों ने अपने भाष्य में महर्षि दयानन्द जी महाराज की शैली की उपेक्षा करके आचार्य सायण के भाष्य की ही नकल की है। आचार्य सायण का भाष्य भी मेरे पास उपलब्ध है। न ज्ञात अभी तक क्यों आर्य जगत् के किसी विद्वान् ने इन भाष्यों पर अपनी आपत्ति नहीं की? दयानन्द संस्थान, दिल्ली का भाष्य मेरे पास नहीं है परन्तु कुछ मास पूर्व मैंने यह भाष्य जयपुर में किन्हीं आर्य सज्जन के घर देखा था। वह भाष्य उन्मत्त प्रलापवत् प्रतीत होता है। जहाँ तक मेरा स्मरण है, उसमें ''टांगों के बीच कपाल लटकता है'' ऐसा लिखा है। ऐसा कथन किसका हो सकता है, यह मैं आप पर ही छोड़ता हूँ।

बन्धुवर! मैं महर्षि जी की भावनानुसार इन दो मंत्रों का भाष्य करके आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। आप मेरे भाष्य तथा अन्य विद्वानों के भाष्य का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें, मेरे भाष्य की अन्य आर्य विद्वानों के भाष्य से शब्दशः तुलना करके विचारें कि मेरे सम्मुख वे ही कठिनाइयां हैं, जो कभी महर्षि जी के सम्मुख थीं। उनके सामने सायण, महीधर आदि वेद भाष्यकारों के दूषित भाष्य थे, तो मेरे सम्मुख जहाँ महर्षि जी का सांकेतिक परन्तु गम्भीर मार्गदर्शक भाष्य है वहीं इन विद्वानों का कहीं–2 अश्लील भाष्य भी है तो कहीं अत्यन्त साधारण स्तर का भाष्य है, जिससे वेद की ईश्वरीयता कदापि प्रमाणित नहीं हो सकती। श्री पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय जैसों का पशुबलि, मांसभक्षणादि दोषों से परिपूर्ण ब्राह्मण भाष्य भी है। **इस कीचड़ से वेद की सर्वज्ञानमयता व ईश्वरीयता सिद्ध करना कितना कठिन कार्य है, यह आप ही गहराई से विचारें।** मैंने इन अश्लील व असभ्य भाष्यों के प्रति चेतावनी सूचक एक पत्र लगभग 251 स्थानों पर भेजा था जिसमें सभायें, आर्य नेता एवं आर्य जगत् के प्रौढ़ विद्वान् सम्मिलित थे।बड़े दुःखद आश्चर्य का विषय है कि अपवाद के अतिरिक्त सभी मौन साध गये। क्या यही आर्यत्व है? **क्या हम नहीं जानते कि व्याख्यान में कही गयी बातें कुछ समय तक व कुछ व्यक्तियों के मध्य ही सीमित रहती हैं जबकि प्रामाणिक माने जाने वाले साहित्य में ऐसी अक्षम्य भूलें साहित्य के जीवित रहने तक मानव समाज को विष के समान त्रास देती रहती हैं। जिस पाप मोचन के लिए महर्षि दयानन्द जी जन्मे, वे ही पाप उनके शीर्ष माने जाने वाले कुछ विद्वान् करने लगे, तब आर्य जाति एवं भारत का विनाश होने में रुकावट ही क्या है?** कुछ व्यक्ति मेरे इस लेखन को मेरे विषय से हटकर व आपत्तिजनक मान सकते हैं। वे वस्तुतः स्वाध्यायविहीन पूर्वाग्रहग्रस्त वा वर्तमान आर्य समाज की पतिता राजनीति से प्रेरित होकर ऐसा कहते हैं। **क्या वे नहीं जानते कि मेरे लक्ष्य में वेद व ब्राह्मण ग्रन्थ दोनों ही प्रमुख हैं। मैं अपने ऐतरेय ब्राह्मण के वैज्ञानिक व्याख्यान की भूमिका में वेद व ब्राह्मण ग्रन्थों के विभिन्न पक्षों की समीक्षा भी करूंगा। उनमें सायण, महीधर के साथ–2 अपने इन विद्वानों के भाष्यों की भी समीक्षा करनी ही होगी।** अभी हाल में सार्वदेशिक सभा (आचार्य बलदेव जी के प्रधानत्व वाली) के उपप्रधान मा. श्री सुरेश जी अग्रवाल तथा आदरणीय श्री पूनमचन्द जी नागर, अहमदाबाद ने दूरभाष पर सूचना दी है कि सार्वदेशिक सभा मेरे विचारों से सहमत है तथा भविष्य में ऐसा प्रकाशन नहीं होगा। यह अच्छी बात है। मा. श्री दीनदयाल जी गुप्ता, कोलकाता हर पत्र पर मेरे साथ हैं। इन तीनों के साथ अभी

तक मैंने आदरणीय श्री अशोक जी आर्य, उदयपुर, आदरणीय श्री चांदरतन जी दम्माणी, कोलकाता को अपना तथा आर्य विद्वानों का भाष्य भेजा था। सभी ने मेरे भाष्य को सराहा तथा मेरी पीड़ा को समझा, यह सन्तोष की बात है। कुछ महानुभाव हसेंगे कि ये कौन से विद्वान् हैं, तो उनसे निवेदन है कि यदि विद्वान् अश्लील भाष्य को ही प्रामाणिक मानते हैं, तो मैं उनसे बहुत दूर ही रहना चाहूँगा। मैंने आर्य समाज की अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भी अपना भाष्य भेजा है। देखना है, कौन–2 प्रकाशित करते हैं? परोपकारिणी सभा, दूसरी सार्वदेशिक व सभी विद्वान् (अपवाद को छोड़कर) मौन हैं। मा. श्री विमल वधावन जी एडवोकेट ने धन्यवाद व्यक्त किया है। **मुझे आश्चर्य है कि यदि विद्वानों को यह सब ज्ञात नहीं था तो वे अपने ग्रन्थों का अध्ययन क्यों नहीं करते हैं? और यदि उन्हें ज्ञात था तो उन्हें सुख की नींद कैसे आती रही है? क्यों वेदों पर बड़े–2 ओजस्वी व्याख्यान व वेद गोष्ठियों में पत्रवाचन करते रहे हैं? क्यों सायण व महीधर को ही अपना निशाना बनाते रहे हैं? अपने घर की सफाई पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया?** जब मेरा ध्यान इस ओर गया और मैंने जब चेताने का प्रयास किया तो भी सर्वत्र सन्नाटा। यह सब क्या है। हाँ, **यह अवश्य है कि महीधर की भांति प्रमत्त यौन क्रीड़ा इन भाष्यों में नहीं है बल्कि संयम का ही उपदेश है परन्तु अति साधारण व अश्लील शब्दों में।**

शंका समाधान :–

1. हाँ, एक बात और स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि अभी किसी युवक (व्याकरणाचार्य) ने शंका की कि इस अश्लीलता पर कोई यह समाधान कर सकता है कि जब वेद में सभी विद्यायें हैं तो शरीर क्रिया विज्ञान भी तो होगा ही, तब ऐसा वर्णन भी हो सकता है। इसमें गलत क्या है? मेरा भी संदेह है कि कई विद्वान् व स्वाध्यायशील आर्यजन धीमे स्वर में इसे सत्य मान सकते हैं। इस कारण उनके भ्रमोच्छेदनार्थ मैं अपने विचार इस विषय में लिखता हूँ–

वेद में परमात्मा का वह ज्ञान मूल रूप में विद्यमान है जो मानव के स्वाभाविक ज्ञान के स्तर से उच्चतर होता है। आहार, विहार, प्रजनन, निद्रा, मरणादि का भय आदि का सामान्य वा स्थूल ज्ञान हर प्राणी को स्वाभाविक रूप से होता है। पशु–पक्षियों को हमसे विशेष होता है। योग में जिस अभिनिवेश क्लेश (मृत्यु से भय) की चर्चा है। उसे पूर्वजन्मस्मृतिजन्य भी माना है। अर्थात् यह भी स्वाभाविक है। भूख से भोजन, प्रजनन, तृषा में जल सेवन, मृत्यु से भय, सुख की लालसा, दुःख से बचना आदि सभी मानव के लिए भी स्वाभाविक है। इसके लिए वेद ज्ञान की आवश्यकता नहीं। हाँ, इनके गम्भीर विज्ञान का मूल वेद में होगा। इन मंत्रों का जो भाष्य आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री व स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक ने किया है, वह न केवल अश्लील व असभ्यतापूर्ण है अपितु नितान्त अनावश्यक भी है। इस प्रकार का स्थूल ज्ञान स्वतः सिद्ध है। जब परमात्मा इस साधारण व पशु स्तरीय ज्ञान के लिए दो मंत्रों की रचना करेगा तब तो सम्पूर्ण प्रजनन विज्ञान पर ही सैकड़ों मंत्रों की आवश्यकता होगी। जरा, किसी प्रजनन विज्ञान के प्रख्यात विशेषज्ञ के पास जाकर देखें कि किस प्रकार इस विषय के उसके पास बीसियों ग्रन्थ मिल जायेंगे, जिसमें विस्तार से प्रजनन क्रिया विज्ञान का सूक्ष्म व गम्भीर वर्णन होगा। उतने पर भी इस प्रकार की स्थूल चर्चा शायद ही हो। तब सोचें कि परमात्मा ने गम्भीर विज्ञान तो बताया नहीं और यौनांगों के ऐसा फूहड़ वर्णन के लिए दो मंत्र रच दिये। हमारे श्री अशोक जी आर्य, उदयपुर के सुपुत्र जो चर्मरोग एवं बालों के रोग के एक विशेषज्ञ चिकित्सक हैं, उन डा. प्रशान्त जी अग्रवाल के कक्ष में मैंने देखा कि बालों के रोगों पर कई मोटे–2 ग्रन्थ रखे थे। वे ग्रन्थ क्लीनिक में ही थे तब बालों के रोगों पर कुल कितने गम्भीर ग्रन्थ होंगे? ऐसे ही एक–2 अंग के विषय में जानें। **यदि इन मंत्रों में प्रजनन विषय पर ही कोई सुसंगत गम्भीर जानकारी होती अथवा ब्रह्मचर्य विषयक कोई गम्भीर व सुसंगत निर्देश होता तो कोई आपत्ति नहीं होती परन्तु ऐसा कुछ है नहीं। इससे तुलना करके देखें कि आधुनिक विज्ञान शिष्ट, गम्भीर व व्यापक रहा अथवा वेद का ऐसा कथित वर्णन? तब तो सम्पूर्ण वेद में मानव शरीर के सभी अंगों का क्रिया विज्ञान भी नहीं आ पायेगा, तब वेद के सर्वज्ञानमयत्व का क्या होगा? तब यदि सर्वज्ञानमयता वाले वेद की कल्पना करें तो परमेश्वर को ऐसे लाखों ग्रन्थ रचने पड़ेंगे।** तब, ऐसे किसी पूर्वाग्रही का समाधान ऐसा ही होगा कि परमात्मा ने कहा, ''भूख लगते ही रोटी की ओर दौड़ो, भागो फिर हाथों से टुकड़े करके खा जाओ।'' इसके लिए दो मंत्र लिखे परन्तु अन्न उत्पादन, वनस्पति–कृषि विज्ञान, पाचन तंत्र के क्रिया विज्ञान, पाचन रोगों, आहार विज्ञान पर परमात्मा ने मौन साध लिया। मेरे बन्धुओ! जरा यह भी तो विचारें कि गृहस्थ धर्म की अनावश्यक चर्चा करने वाले आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः' अंश की संगति शेष मंत्र से कहाँ लगा सके? उधर स्वामी

ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक का इन मंत्रों से पूर्व मंत्रों तथा इसके बाद के मंत्रों में खगोल विज्ञान की चर्चा कर रहे हैं और अचानक गृहस्थ धर्म कैसे याद आया? वह भी पूर्णतः असंगत, आपत्तिजनक व अनावश्यक। **वास्तविकता यह है कि इन विद्वानों को इन मंत्रों का भाष्य सूझा ही नहीं तो सायण भाष्य को देखा और उसी की नकल कर डाली, इसका परिणाम नहीं सोचा।**

2. एक अन्य युवक (साहित्याचार्य) का कहना था कि ऐसी क्रमभंगता तो महर्षि के वेद भाष्य में भी अनेकत्र है जहाँ एक प्रसंग चलते–2 अनायास ही उससे सर्वथा भिन्न प्रसंग चल पड़ता है, पुनः पूर्व प्रसंग आ जाता है। ऐसा वेद में क्यों है?

इस पर मेरा मानना यह है कि महर्षि के प्रारम्भिक भाष्य में ऐसा नहीं है। जब वे अपना भाष्य शीघ्रता में तथा सांकेतिक संक्षिप्त करने को विवश हुए तब उन्हें विभिन्न प्रकार के अर्थ करने की शैली मात्र बताने के लिए ऐसा करना पड़ा हो। **उनके सम्मुख अनेक चुनौतियां थीं, अनेक कार्य थे। एक स्थान पर निश्चिन्तता से बैठकर वेदभाष्य का अवसर उन्हें नहीं मिला। उन्हें अपनी आयु पर आते संकट का भी भान था, इस कारण यथा–तथा भाष्य पूर्ण करने का प्रयास करने की विवशता थी।** उन्होंने विचारा होगा कि मेरे संकेतों को समझकर आने वाली पीढ़ी विस्तार से पूर्ण भाष्य कर लेगी। **यद्यपि वे विस्तृत करने के संकल्प के साथ ही पूर्ण आत्म विश्वास के साथ वेद भाष्य में प्रवृत्त हुए थे परन्तु नियति का भान भी उन्हें शीघ्र हो गया था।** इस पर इस युवक का यह भी कहना था कि महर्षि ने कई स्थानों पर भावार्थ में घोड़े के द्वारा घोड़ी के अन्दर गर्भधारण की भांति पुरुष द्वारा स्त्री में गर्भ धारण का संकेत क्यों किया जबकि यह भी साधारण बात है जो सर्वविदित है। इस पर मेरा कथन है कि महर्षि पुरुष व स्त्री के शारीरिक सम्बन्ध की आज्ञा सर्वत्र केवल और केवल सन्तानोत्पत्ति हेतु ही देते हैं और वास्तव में यही सृष्टि नियमानुकूल है। सत्यार्थ प्रकाश में भी पदे–2 वीर्य व्यर्थ न करने हेतु कहते हैं। महर्षि जी तो जीवन भर स्वप्न दोष भी न होने की बात करते हैं और हम यह भी जानते हैं कि पशुओं में स्वप्न दोष नहीं होता है। **यदि कोई इतना अखण्ड ब्रह्मचारी रह सके तो वही महर्षि की दृष्टि में श्रेष्ठ व ईश्वरीय व्यवस्था का पालक है। अतः महर्षि पर शंका करना तो बालकपन की बात है।** वे मानवीय दुर्बलता अर्थात् दुर्बल मानव की अपूरणीय काम पिपासा को भी जानते हैं, इस कारण इस दुर्बलता को दूर करने हेतु वे जोर देकर गर्भधारण की बात करते हैं। इससे उनका आशय है कि जब गर्भ धारण करना आवश्यक व इच्छित हो तभी शारीरिक सम्बन्ध होवे अन्यथा कदापि नहीं। घोड़े व घोड़ी का उदाहरण इस कारण देते हैं क्योंकि घोड़ा बलवीर्य के प्रतीकों में प्रमुख माना जाता है तथा उसका सम्बन्ध तभी होता है जब घोड़ी की गर्भधारण की इच्छा होती है। महर्षि कुत्ते वा चिड़े का उदाहरण नहीं देते हैं जो अति कामी तो होता है परन्तु बल सम्पन्न नहीं होता। महर्षि सन्तान को अति बल सम्पन्न भी बनाने पर बल देते हैं। इस कारण भी बल वीर्य पराक्रम सम्पन्न घोड़े–घोड़ी का उदाहरण उचित ही है। इस कारण महर्षि के भाष्य के भावार्थ से इन मंत्रों के इन विद्वानों के भाष्य से तुलना नहीं की जा सकती। **महर्षि विगत पाँच हजार वर्षों में एक आदर्श ब्राह्मचारी व योगी थे। वे उसी चरम आदर्श की ही बात सर्वत्र गृहस्थों को भी सिखाना चाहते हैं।** वे प्रजनन विज्ञान के गम्भीर ज्ञान के साथ गर्भाधान के नियत दिन व उचित विधि का भी अपने ग्रन्थों में इसी कारण वर्णन करते हैं कि गर्भ धारण करके बल, वीर्य, मेधा एवं आध्यात्मिक संस्कारों से सम्पन्न संतति ही जन्म ले, न कि इन्द्रिय लोलुपता के कूप में गृहस्थ लोग गिरकर अपना सर्वनाश करें। **उस महामानव पर शंका करना अज्ञानता का प्रमाण है।** इस विषय में मेरी लिखी पुस्तक **'सत्यार्थ प्रकाश – उभरते प्रश्न, गर्जते उत्तर'** भी पढ़ सकते हैं। इन भाष्य व मंत्रों में जो शब्द योजना है, वह प्रजननांगों के वर्णन में अत्यन्त मर्यादा विहीन व अनावश्यक है। यदि अधिक भोग लिप्सा के निषेध का ही बात कहनी होती तब दूसरी प्रकार से शिष्ट भाव में कहा जा सकता था। वैसे भी ब्रह्मचर्य विषयक अनेक मंत्र सुन्दर भाषा में उपलब्ध हैं, ही। बात भी ब्रह्मचर्य की कहनी और भाषा लम्पटपन की रखनी, यह सम्भव नहीं।

मेरे बन्धुओ! **मेरे भाष्य को आप माने वा न मानें, यह आपका अधिकार है परन्तु कृपा करके वेद पर ऐसे प्रहार मत करिये। इस पर दया करिये। पारस्परिक रागद्वेष की आग में वेद को मत जलाइये। मैं महर्षि दयानन्द जी महाराज के संक्षिप्त वेदभाष्य को विस्तृत व अन्य विद्वानों के वेदभाष्य के स्थान पर इसी प्रकार त्रिविध प्रक्रिया अपना कर विस्तृत भाष्य होते देखने को आतुर हूँ, परन्तु कौन करेगा? मैं नहीं जानता। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि ऐतरेय ब्राह्मण का वैज्ञानिक भाष्य तक ही मेरी सामाजिक आयु है। इसी से मेरा संकल्प भी भवत्कृपया पूर्ण हो जायेगा, फिर ईश्वर ही जाने क्या करूंगा।** हाँ, आप सबका पूर्ण सहयोग सदा

रहा, शरीर स्वस्थ रहा एवं कोई मेधावी व पूर्ण सदाचारी युवा शिष्य मिल गया तो मैं अवश्य फिर वेदभाष्य कराने की दिशा में कुछ समय देना चाहूँगा परन्तु अधिकांश समय एकाकी ईश्वराराधना में ही व्यतीत करने की ही प्रबल इच्छा है। फिर यह भविष्य के गर्भ में है।

मुझे बहुत परिश्रम करना पड़ रहा है। अपने शास्त्रों के साथ–2 वर्तमान भौतिक विज्ञान के विश्वस्तरीय ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन फिर विश्वस्तरीय वैज्ञानिकों से चर्चा सब कुछ एकाकी ही तो करनी पड़ती है। उस पर ऐसे प्रसंग आ जाते हैं जिनका समाधान भी वेद रक्षार्थ करना ही पड़ता है। यदि इनका समाधान अन्य विद्वान् कर देते तो मेरा समय क्यों नष्ट होता? सभी कृपा करके वेद हित में ही विचारें। यदि आपके आत्मा को उचित प्रतीत होवे तो सहयोग करते रहें अन्यथा जैसी आपकी इच्छा। अर्थात् **यदि आप वेद व ऋषियों के ग्रन्थों में अश्लीलता, मांसाहार, पशुबलि आदि पापों का होना मानते हैं तो मुझसे सम्बंध तत्काल विच्छेद कर लें और यदि आप अपना आदर्श भगवत्पाद महर्षि दयानन्द जी को मानते हैं तो पूर्ण शक्ति के साथ मेरा साथ दें। अन्यों को भी प्रेरणा करें। आप वर्तमान विद्वानों को आदर्श मानते हैं अथवा महर्षि जी व वेद को, यह आपको ही निश्चय करना है। मैं तो इन पापों को सर्वथा नष्ट करने हेतु ही कृत संकल्प हूँ। विकल्प आप चुनें।** ईश्वर सबका भला करें। इसी कामना के साथ

निवेदन :– सभी महानुभावों से निवेदन है कि इस विषय में यदि कोई विद्वान् अपनी शंकाएं प्रस्तुत करते हैं, तो हमें भेज सकते हैं परन्तु उनका समाधान जो मुझे महत्वपूर्ण प्रतीत होगा, उसे मैं एक साथ अपने ऐतरेय भाष्य में ही करूंगा। अब तक मैंने बहुत समय सबको समझाने में लगाया। अब मेरे पास समय नहीं है।

आपका

आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक
प्रमुख, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास
आचार्य, वेद विज्ञान मन्दिर

विभिन्न वैदिक विद्वानों का भाष्य

1. **आचार्य सायण का भाष्य**
प्रकाश– कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१६।

हे इन्द्र स जनो नेशे मैथुनं कर्तुं नेष्टे न शक्नोति यस्य जनस्य कपृच्छेपः सक्थ्या सक्थिनी अन्तरा रंबते लम्बते। सेत् स एव स्त्रीजन ईशे मैथुनं कर्तुं शक्नोति यस्य जनस्य निषेदुषः शयानस्य रोमशमुपस्थं विजृम्भते विवृतं भवति। यस्य च पतिरिंद्रो विश्वस्मादुत्तरः।।१६।

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषोविजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१७।

स जनो नेशे मैथुनं कर्तुं नेष्टे यस्य जनस्य निषेदुषः शयानस्य रोमशमुपस्थं विजृम्भते विवृतं भवति। सेत् स एव जन ईशे मैथुनं कर्तुं शक्नोति यस्य जनस्य कपृत् प्रजननं सक्थ्या सक्थिनी अंतरा रंबते लंबते। सिद्ध्यमन्यत्। पूर्वोक्तव्यतिरेकोऽत्र द्रष्टव्यः। पूर्वस्यामृचि यियप्सुरिंद्राणींद्रं वदति अत्र त्वयियप्सुरिंद्र इंद्राणीं वदतीत्यविरोधः।।१७।

नोट– यह भाष्य अश्लील होने से हम इसका हिन्दी अनुवाद करना उचित नहीं समझते।

2. **भाष्यकार– श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री**
प्रकाशक– सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१६।
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषोविजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१७।

नोट– इनका भाष्य केवल हिन्दी भाषा में है, जिसे अश्लील होने के कारण हम प्रकाशित नहीं कर सकते। जिन्हें यह भाष्य देखना हो, वे वेदभाष्य देखें अथवा परोपकारी, मार्च प्रथम 2013 देखें (www.paropkarinisabha.com) पर भी उपलब्ध रहती है।

3. **भाष्यकार– श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड**
   प्रकाशक– परोपकारिणी सभा, अजमेर

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१६।
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषोविजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१७।

भाष्य :– इष्टं गार्हस्थ्यमधिकरोति (यस्य कपृत्) यस्य सुखं पृणाति ददाति यत्तदङ्गम् ''पृणाति दानकर्मा'' निघंटु ३.२० क पूर्वकात् पृ धातो क्विपि रूपं तुक् च (सक्थ्या–अन्तरा रम्बते) सक्थिनी अन्तरा लम्बते (सः–इत्–ईशे) स एव गार्हस्थ्यमधिकरोति (यस्य निषेदुषः) यस्य निषदतो निकटं शयानस्य (रोमशं विजृम्भते) रोमशमङ्ग विजृम्भणं करोति विशिष्टं गात्रविनाम करोति (न सः–ईशे) न हि स खलु गार्हस्थ्यमधिकरोति (यस्य निषेदुषः–रोमशं विजृम्भते) यस्य निकटं शयानस्य रोमशमङ्गं गात्रविनाम करोति (स–इत्–ईशे) स एव गार्हस्थ्यमधिकरोति (यस्य सक्थ्या–अन्तरा कपृत्–रम्बते) यस्य निकटं शयानस्य सक्थिनी अन्तरा सुखदायकमङ्गं लम्बते रोमशाङ्गस्य विजृम्भणं सुखप्रदाङ्गस्य योनौ लम्बनञ्च।।१५–१७।।

नोट– अश्लील होने से हम हिन्दी भाष्य को प्रकाशित नहीं कर सकते। जो भाष्य देखना चाहें, वे वेद भाष्य वा परोपकारी मार्च प्रथम २०१३ पढ़ें।

4. **भाष्यकार– श्री पं. जयदेव शर्मा, विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ**
   प्रकाशक– आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१६।

भाष्य :– (यस्य कपृत्) जिसका सुखग्राही अन्तःकरण (सक्थ्योः अन्तरा) आसक्तिजनक राग द्वेषादि के बीच (रम्बते) लटक जाता, मुग्ध हो जाता है (न सः इत् ईशे) वह शासन नहीं कर सकता। प्रत्युत (निसेदुषः) नित्य और निरन्तर निगूढ़ रूप से विद्यमान (यस्य) जिसका बनाया (रोमशं) हुआ लोम के समान किरणों वाला सूर्य बिम्ब (विजृम्भते) गर्व पूर्वक तमतमाता है, वही (इन्द्रः) सब जगत् का स्वामी (विश्वस्मात् उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट है।

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषोविजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१७।

भाष्य :– (न सा ईशे) वह प्रकृति अधीश्वरी (यस्य रोमशं) नहीं है जिसका कि लोम के समान ओषधिवनस्पति वर्ग (विजृम्भते) नाना प्रकार से भूमि पर उगता है। (सः इत् ईशे) वो ही प्रभु सब पर शासन करता है (यस्य) जिसका दिया सुख तथा (क–पृत्) पालन सामग्री (सक्थ्या अन्तरा) परस्पर सम्मिलित आकाश और भूमि दोनों के बीच (रंबते) विद्यमान है। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) वह प्रभु ही सबसे उत्कृष्ट है।

5. **श्री पं. शिवशंकर जी काव्यतीर्थ 'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय' ग्रन्थ से**

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्याऽकपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१६।

पुनः इन्द्राणी उत्तेजना बढ़ाती हुई कहती है हे इन्द्र! आपने जो आश्वासजनक बातें कहीं हैं वे सब ठीक हैं परन्तु विषयी पुरुष संसार में कुछ विशेष कार्य्य नहीं कर सकता आप उन अज्ञानी पुरूषों के कुकर्म्मों में इस प्रकार लिप्त हैं कि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी आपके लिये दुस्तर है। ऐ स्वामिन्! देखिये! **(सः+न+ईशे)** वह पुरुष जगत् का शासन नहीं कर सकता **(यस्य+कपृत्+सक्थ्या+अन्तरा+रम्बते)** जिसका कपृत अर्थात् कपाल=शिर सर्वदा नीचे को झुकता है, किन्तु **(सः+इत्+ईशे)** पुरुष जगत् का शासन करता **(निषेदुषः+यस्य+रोमशम्+ विजृम्भते)** अपने गृह पर बैठे हुए भी जिस पुरुष का ज्ञान पृथिवी पर सूर्यवत् प्रकाशित होता रहता है। **(विश्वस्मादिन्द्र उत्तर :) सक्थि**=जंघा, जाँघ। **'सक्थि क्लीवे पुमानूरुः' कपृत्**= कपाल, शिर, माथा। कं सुखं पृणातीति कपृत्=जो सुख का पालन करे। कपाल शब्द का भी यही अर्थ है **'कं सुखं पालयतीति कपालः'** कहीं **'क'** यह नाम ही शिर का है जैसे केश। अतःकपाल और कपृत् एकार्थक हैं।१६।

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषोविजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्याऽकपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१७।

पुनः उक्त अर्थ को दूसरे प्रकार से कहती है। यह ऋचा ठीक १६वीं ऋचा से उल्टी प्रतीत होती है, परन्तु भाव और शब्दार्थ में भेद है। यथा **(सः+न+ईशे)** वह पुरुष ऐश्वर्यवान् नहीं हो सकता **(निषेदुषः+यस्य+रोमशम्+विजृम्भते)** बैठे हुए जिस पुरुष का ज्ञान विज्ञान जम्भाई ले रहा है अर्थात् जैसे आलसी पुरुष बैठा हुआ जम्भाई लिया करता है। उससे पुरुषार्थ का कोई कार्य बन नहीं पड़ता, तद्वत् जो विद्वान् पढ़ लिख के भी सदा आलस्य में बैठा हुआ जम्भाई लेता रहता। मानो, उसकी विचारी विद्या भी उसके साथ जम्भाई लेते रहती है ऐसे पुरुष ऐश्वर्यशाली नहीं हो सकते। किन्तु **(सः+ईशे)** निश्चय वही 'ऐश्वर्यशाली' होता है **(यस्य+कपृत्+सक्थ्या+अन्तरा +रम्बते)** जिसका शिर अर्थात् जिसकी दृष्टि दोनों जांघों के बीच झुकी हुई है अर्थात् केवल विद्या के अध्ययन से कुछ लाभ नहीं किन्तु जिसकी दोनों जंघाओं में पूरा बल है। जिसकी दोनों जंघाएँ कभी भ्रष्ट नहीं हुई है, जिसका इन्द्रिय दूषित नहीं हुआ है, जो सदा इन्द्रियरक्षार्थ सावधान है, जो सदा देखता रहता है कि मेरा कोई इन्द्रिय कलंकित तो नहीं हुआ, वहीं ऐश्वर्यशाली हो सकता है इत्यादि। पुरुषार्थसूचक दोनों ऋचाएँ हैं।*१७।*

परन्तु शोक की बात है कि सायण और श्री रमेशचन्द्रदत्त आदिक पुरुषों ने इन १६वीं और १७वीं ऋचाओं का ऐसा बीभत्स और घृणित अर्थ किया है कि सभ्य पुरुष उसको सुनना भी पसन्द न करेंगें। ग्रिफिथ ने इसीकारण इन दोनों का इंग्लिश में अनुवाद नहीं किया वे फुटनोट में लिखते हैं कि –

I pass over stanzas 16 and 17, which I cannot translate into decent English.

निवेदन– पूज्य पण्डित शिवशंकर जी की सायण भाष्य पर की गई कठोर टिप्पणी क्या हमारे उपर्युक्त दो विद्वानों के भाष्य पर लागू नहीं होती? उस समय ये भाष्य नहीं थे अन्यथा पं. जी को रोना पड़ता। जागो! सत्यजित् जी जैसे विद्वानों! जागो!

नोट– इन मंत्रों पर मेरा भाष्य अगले अध्याय में देखें।

(४) वेदभाष्य की मेरी शैली

यद्यपि मैं कोई वेद भाष्य नहीं कर रहा और न ही ऐसी मेरी कोई योजना है। मैं ऋग्वेद के ब्राह्मण ऐतरेय ब्राह्मण का वैज्ञानिक भाष्य कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि इस भाष्य से ही विश्व में वेद की वैज्ञानिकता व ईश्वरीयता सिद्ध करने का मेरा संकल्प पूर्ण हो जायेगा। इस ब्राह्मण में ऋग्वेद के सैकड़ों मंत्रों का उल्लेख है और मैं उन मंत्रों तथा ऐतरेय ब्राह्मण की कण्डिकाओं पर जिस दृष्टि से विचारता हूँ, वही दृष्टि यदि वेद भाष्य में अपनायी जाये तो वेद का क्या स्वरूप होगा, यह इस लेख से कुछ विदित हो सकेगा। **मेरा मत है कि भगवत्पाद महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने वेद भाष्य अति संक्षेप में व सांकेतिक ही किया है। उनके सम्मुख उस समय अनेक गम्भीर समस्यायें थीं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, राष्ट्रिय व वैश्विक समस्याओं पर समानरूपेण श्री महाराज जी दृष्टि रखने वाले एवं सबके समाधान का मूल बतलाने वाले वे एक महान् दूरद्रष्टा ऋषि थे।** वे वेद भाष्य प्रारम्भ में विस्तृत परन्तु धीरे–2 अति संक्षिप्त करते गये। सम्भवतः उन्हें अपने जीवन पर संकट की आशंका का भी अनुमान हो गया था। हमें उनके वेद भाष्य के संकेतों तथा उनकी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की भावना को दृष्टिगत रखकर वेदभाष्य पर विचार करना चाहिए। **यद्यपि यह कार्य ऋषि कोटि के विद्वान् का ही है पुनरपि मैं अपने ऐतरेय ब्राह्मण के व्याख्यान के दृष्टिकोण से वेद पर भी लेखनी चलाने का अनधिकार साहस कर रहा हूँ।** मैंने महर्षि के अतिरिक्त अन्य आर्य विद्वानों वा सायण के वेदभाष्य को भी कुछ–2 देखा है। मैं उदाहरण के लिए ऋग्वेद १०.८६.१६–१७ मंत्रों का भाष्य प्रस्तुत कर रहा हूँ। इन मंत्रों का महर्षि ने भाष्य नहीं किया था क्योंकि वे ऋग्वेद के ७.६२.२ तक ही भाष्य कर पाये थे। **इन मंत्रों का भाष्य मैंने जो–2 भी देखा है, वह अत्यन्त अश्लील तो कहीं इनका भाष्य असंगत तो कहीं उन्मत्त प्रलापवत् मिलता है।** मैं उन भाष्यकारों व प्रकाशकों का नाम उनके सम्मान को ध्यान में रखते हुए प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। पाठक स्वयं अपने पास उपलब्ध किसी भी भाष्य से तुलना कर सकते हैं। मैंने पाँच भाष्यकारों का भाष्य देखा है, जिनमें से एक आचार्य सायण हैं तो अन्य चार आर्य विद्वान् हैं। इस भाष्य पर मैं प्रकाशकों व विद्वानों के समक्ष अपनी गम्भीर आपत्ति भी व्यक्त कर चुका हूँ। अब कुछ ऋषिभक्त मित्रों के आग्रह पर मैंने इसे प्रकाशित करना अति उचित समझा है। आशा है विद्वान् पाठक मेरे इस भाष्य को अन्य भाष्यों से मिलाकर अपने विवेक से निर्णय करेंगे। ये दो मंत्र हैं–

1. *न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृत्।*
   सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१६।
2. *न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषोविजृम्भते।*
   सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।ऋग्वेद १०.८६.१७।

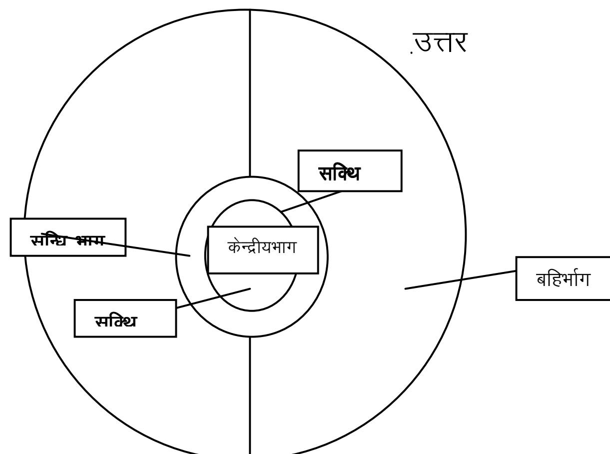
मेरी भूमिका व इन मंत्रों की पृष्ठभूमि :– मेरी दृष्टि में वेद उन छन्दों का समूह है जो सृष्टि प्रक्रिया में कम्पन के रूप में समय–2 पर उत्पन्न होते हैं। विभिन्न प्रकार के छन्द विभिन्न प्रकार के प्राण होते हैं, जिनकी उत्पत्ति के कारण ही व जिनके विकृत होने से अग्नि, वायु आदि सभी तत्वों का निर्माण होता है। सूर्य, तारे, पृथिव्यादि सभी लोक इन छन्द प्राणों के ही विकार हैं। सृष्टि प्रक्रिया में उत्पन्न विभिन्न छन्द Vibrations के रूप में इस समय भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। इन्हीं प्राणों को अग्नि आदि चार ऋषियों ने सृष्टि की आदि में सविचार सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में ईश्वरीय कृपा से ग्रहण किया था और फिर ईश्वरीय कृपा से ही उनके अर्थ का भी साक्षात् किया था। यही वेदोत्पत्ति की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। वेद मंत्रों के ऊपर उल्लेखित विभिन्न ऋषि जहाँ उपकार स्मरणार्थ उन मानव ऋषियों के नाम हैं, जिन्होंने अग्नि आदि ऋषियों के पश्चात् सर्वप्रथम उस–2 मंत्र का अर्थ साक्षात् करके संसार में प्रचार प्रसार किया था, वहीं वे ऋषि सृष्टि में सूक्ष्म प्राण के रूप में उस समय जन्मे थे, जब उस छन्द रूपी प्राण (मंत्र) की उत्पत्ति सर्गप्रक्रिया में हुई थी। आज भी वे ऋषि रूपी सूक्ष्म प्राण इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं, जबकि ऐतिहासिक मानव ऋषि अब नहीं रहे। वेद का अर्थ करने में ऐतिहासिक मानव ऋषि के ज्ञान की आवश्यकता नहीं परन्तु देवता का ज्ञान होना अनिवार्य है। हाँ, **उस वेदमंत्र का सृष्टि प्रक्रिया पर क्या प्रभाव होता है, यह जानने हेतु देवता के साथ ऋषि व छन्द का ज्ञान भी अनिवार्य होता है।** इस दृष्टि के अनुसार इन दो मंत्रों की पृष्ठभूमि लिखते हैं–

इन ऋक् अर्थात् प्राणों की उत्पत्ति वृषाकपिइन्द्र व उसकी शक्ति से हुआ करती है। इसका तात्पर्य है कि विद्युद्वायु युक्त तीव्र बलवान् सूर्य लोक के भीतरी भाग में स्थित इन प्राथमिक ऋषि प्राणों से इन दो मंत्र रूपी प्राणों (छन्दों) की उत्पत्ति होती है। इनके उद्गम ऋषि प्राण बहुत बलवान् होने से इन प्राण छन्दों में भी बहुत बल होता है अर्थात् बलों को उत्पन्न करने वाले होते हैं। इनका देवता इन्द्र है। इसका तात्पर्य है कि इन ऋक् प्राणों (मंत्रों) के द्वारा सूर्य के मध्य विभिन्न विद्युद् बलों की उत्पत्ति होती है तथा इन मंत्रों में सूर्य का ही वर्णन है। इनका छन्द निचृत् पंक्ति छन्द है। इनके छान्दस प्रभाव से सूर्य के बहिर्भाग से विभिन्न परमाणुओं को सूर्य के केन्द्रीय भाग में ले जाया जाता है और ऐसा करते हुए बाहरी व आन्तरिक भाग में भारी क्षोभ उत्पन्न होता है। परस्पर संघर्षण, टकराव समृद्ध होते हुए एक दूसरे को अपने बन्धन बलों द्वारा बांधने का कार्य होता है।

अत्र प्रमाणानि :–

1. **आधिदैविक पक्ष में–** इन्द्रः = कालविभागकर्त्तासूर्यलोकः (भाष्य ऋग्वेद १.१५.१), विद्युदाख्योभौतिकाऽग्निः (भाष्य ऋग्वेद १.१६.३), महाबलवान् वायुः (महर्षि कृत भाष्य ऋग्वेद १.७.१), इन्द्राणी = इन्द्रस्य सूर्यस्य वायोर्वा शक्तिः (भाष्य ऋग्वेद १.२२.१२)। वृषा = वीर्यकारी (भाष्य ऋग्वेद ३.२.११), वेगवान् (भाष्य ऋग्वेद २.१६.६), परशक्तिबन्धक (भाष्य ऋग्वेद २.१६.४), वृषाकपिः = वृषा चाऽसौकपिः। कपिः = कम्पतेऽसौ (उणादि कोषः), आदित्यः (गोपथ ब्राह्मण)। कपृत् = क + पृत्, 'पदादिषु मांस्पृत्स्नूनामुपसंख्यानम्' (वा. अष्टाध्यायी ६.१.६३) से पृतना को पृत् आदेश। पृतना = सेना (आप्टे शब्दकोष) संग्रामः (महर्षि दयानन्दः), कः = प्राणः (प्राणो वाव कः – जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण)। सक्थि = सजतीति (उणादि कोषः), षंजसंगे = आलिंगन करना, सटे रहना, सक्थिक्यां क्रौञ्चौ (अजायेताम्) (जै. २.२६७), क्रौञ्चः = रज्जुः (तां.ब्रा.), रज्जुः = रश्मिः, अत्र प्रमाणानि–रश्मयः = रज्जवः किरणा वा (भाष्य यजुर्वेद २६.४२), रश्मेव = (रश्मा + इव) = किरणवद् रज्जुवद् वा (भाष्य ऋग्वेद ६.६७.१), प्राणाः रश्मयः (तै.सं.)। रोमशः = लोमशः (रेफस्य लत्वम्), लोमाः = छन्दांसि (शतपथ ब्रा.), पशवः (तां.ब्रा.), प्राणा = छन्दांसि (मै. ३.१.६)। रम्बते = लम्बते (रेफस्य लत्वम्) क्वचित् रम्बते भी रहेगा। निषेदुः = निषण्णाः (निरुक्त १३.१०), नितरां दृढ़स्थित, विश्रान्त, नतमुख, रिवन्न, कष्टग्रस्त। ऋषयः = ज्ञापकाः प्राणाः (भाष्य यजुर्वेद १५.११), प्रापका वायवः (भाष्य यजुर्वेद १५.१०), बलवन्तः प्राणाः (भाष्य यजुर्वेद १५.१३), प्राणा वा ऋषयः (ऐतरेय ब्रा., शतपथ ब्रा.), धनञ्जयादयः सूक्ष्मस्थूल वायवः प्राणाः (भाष्य यजुर्वेद १५.१४)।
2. **आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक पक्ष में–** इन्द्रः = राजा (भाष्य ऋग्वेद ६.२६.६), विद्वन्मनुष्यः (भाष्य यजुर्वेद २६.४), जीवः (भाष्य ऋग्वेद ३.३२.१०)। कपृत् = कम् सुखनाम (निघंटु), अन्ननाम (निघंटु), उदकनाम (निघंटु), सुखस्वरूपःपरमेश्वरः (भाष्य यजुर्वेद ५.१८)। पृत् = संग्रामनाम (निघंटु), सेना = सिन्वन्ति बध्नन्ति शत्रून् याभिस्ताः (भाष्य यजुर्वेद १७.३३), बलम् = (भाष्य ऋग्वेद २.३३.११), सेश्वरा समानगतिर्वा (निरुक्त २.११)। क्रौञ्चम् = वाक् (तां.), रश्मिः = ज्योतिः, यमनात् (निरुक्त २.१५), अन्नम् (शत.), विश्वेदेवाः (शत.), देवः = धनं कामयमानः (भाष्य ऋग्वेद ७.१.२५)। लोम = अनुकूलवचनम् (भाष्य यजुर्वेद २३.३६), रोमा रोमाणि औषध्यादीनि (भाष्य ऋग्वेद १.६५.४)।

सूचना :– यहाँ प्रायः सभी प्रमाण महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के वेद भाष्य से ही लिए गये हैं। लेख में कुछ मुद्रण दोष थे, जिन्हें सत्यजित् जी के ध्यान दिलाने पर दूर कर दिया गया है। एतदर्थ उनका धन्यवाद



दक्षिण

सूर्य मण्डल

आधिदैविक भाष्य :–

1. जब सूर्य के अन्दर (कपृत्) विभिन्न प्रकार के प्राणों की सेना अर्थात् धारा stream एवं उनका संघर्षण interaction उस सूर्य की (अन्तरा सक्थ्या) सूर्य के केन्द्रीय व बहिर्भाग को जोड़ने वाले उत्तरी व दक्षिणी दृढ़ भागों जिनसे विभिन्न प्रकार के विकिरणों व प्राणों vibrations की धारायें streams उत्पन्न होती रहती हैं, के बीच (रम्बते = लम्बते) पिछड़ कर ठहर सी जाती है अथवा फैलकर मन्द पड़ जाती हैं। उस समय (न स ईशे) वह इन्द्रतत्व अर्थात् सूर्य में स्थित बलवान् वैद्युत वायु समस्त सूर्य किंवा दोनों भागों के बीच की गति व संगति में तालमेल–सामंजस्य रखने में असमर्थ हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि सूर्य के दोनों भागों अर्थात् नाभिकीय संलयन युक्त केन्द्रीय भाग जिसमें सतत अपार ऊर्जा उत्पन्न होती रहती है, जिसे सूर्य की भट्टी कह सकते हैं एवं बहिर्भाग की जो पृथक्–2 घूर्णन गति होती है और दोनों के मध्य जो एक ऐसा संधि क्षेत्र होता है, जिसके सिरे उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव की ओर होते हैं, के बीच सन्तुलन खोने लगता है। इस कारण समस्त सूर्य पर संकट आ सकता है। अब इसी मंत्र में आगे कहते हैं कि ऐसी अनिष्ट स्थिति कब नहीं बनती और कब यह सूर्य सन्तुलित व अनुकूलन की स्थिति में होता है? (यस्य निषेदुषः) जिस निरंतर दृढ़ तेजस्वी उपर्युक्त इन्द्र के प्राणों की सेना अर्थात् vibrations की streams (रोमशम् = लोमशम्) विभिन्न छन्द रूपी प्राणों तथा मरुत् अर्थात् सूक्ष्म पवनों से अच्छी प्रकार सम्पन्न होकर (विजृम्भते) विशेष रूपेण जागकर अर्थात् सक्रिय होकर अपने बल व तेज से सम्पन्न होती है, (स इत् ईशे) तब यह इन्द्र अर्थात् विद्युदग्नियुक्त वायु सूर्य के दोनों भागों की गति व स्थिति को नियंत्रण में रखने में समर्थ होता है। यह प्राण सेना stream उपर्युक्त सक्थि अर्थात् सूर्य के दोनों भागों को मिलाने वाले उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों की ओर स्थित संधि भागस्थ दृढ़ भागों के बीच ही उत्पन्न व सक्रिय होती है। (विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः) यह इन्द्र तत्व अर्थात् विद्युदग्नियुक्त तेजस्वी बलवान् वायु अन्य तेजस्वी पदार्थों की अपेक्षा उत्कृष्ट व बलवत्तम है। यही बलपति है तथा सृष्टि यज्ञ को उत्कृष्टता से तारने वाला है।

(भाष्य ऋग्वेद १०.८६.१६)

भावार्थ :– जब सूर्य के केन्द्रीय भाग व बहिर्भाग को जोड़ने वाली दृढ़ स्तम्भ रूपी उत्तरी व दक्षिणी प्राण धारायें मन्द हो जाती है, तब सूर्य के दोनों भागों में संतुलन खोकर सूर्य का अस्तित्व संकटग्रस्त हो सकता है और जब वे दोनों धारायें विशेष रूप से सक्रिय व सशक्त होती हैं, तब सूर्य का सन्तुलन उचित प्रकार से बना रहता है।

2. जब सूर्य के अन्दर (कपृत्) विद्युदग्नियुक्त वायु के विभिन्न प्राणों की सेना stream उसके (अन्तरा सक्थ्या) सूर्य के केन्द्रीय व बहिर्भाग के मध्य स्थित उनको जोड़ने वाले उत्तरी व दक्षिणी दृढ़ भागों जिनमें विभिन्न प्रकार के प्राणों vibrations की धारायें उत्पन्न होती रहती हैं, के बीच (रम्बते = लम्बते) चिपक कर, उनको अपने नियंत्रण में लेकर ऊपरी भाग को ऊपर ही लटकाने, धारण करने में समर्थ होती है, तब (स इत् ईशे) वैद्युत अग्नि युक्त वायु रूपी इन्द्र इन्हें अर्थात् सूर्य के दोनों भागों को सन्तुलित रखने में समर्थ होता है अर्थात् उस समय सूर्य का बहिर्भाग उसके केन्द्रीय भाग जिसमें नाभिकीय संलयन की प्रक्रिया सतत चलती है, के ऊपर सन्तुलन बनाये रखते हुए सतत फिसलता रहता है परन्तु यदि (रोमशम् = लोमशम्) प्रशस्त बल युक्त छन्द प्राण vibrations व मरुत् अर्थात् सूक्ष्म पवन (विजृम्भते) खुलकर फैल जाते हैं, जिससे उनका प्रभाव मंद पड़ जाता है। जैसे किसी पानी की धारा को जब तीव्र दाब से फैंका जाता है तो उसमें भारक क्षमता तेज होती है। वह पत्थर को भी छेद सकती है, किसी प्राणी को मार सकती है परन्तु जब वही धारा बड़े छिद्र में से प्रवाहित कर दी जाये तो वह खुलकर फैल जायेगी और उसका मारक वा छेदक प्रभाव मंद वा बंद पड़ जाता है। उसी मंदता की यहाँ चर्चा है। (न स ईशे) उस समय वह इन्द्र तत्व अर्थात् विद्युदग्नियुक्त वायु सूर्य के उन दोनों मार्गों पर सन्तुलन–सामंजस्य खो सकता है, जिससे सूर्य का

अस्तित्व संकट में पड़ सकता है। (विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः) यह इन्द्र तत्व ही अखिल उत्पन्न पदार्थ समूह रूपी संसार में सबसे श्रेष्ठतम व बलवत्तम है तथा यह समस्त अन्न अर्थात् संयोज्य परमाणुओं को उत्कृष्टता से तारते हुए जगद्रचना में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। (भाष्य ऋग्वेद १०.८६.१७)

भावार्थ :– जब सूर्य के केन्द्रीय व बहिर्भाग के बीच प्रवाहित उत्तरी व दक्षिणी प्राण धारायें तीव्र बलवती होती हैं, तब दोनों भागों के बीच की गति व अवकाश का सन्तुलन व सामंजस्य बना रहता है परन्तु जब वे धारायें इधर उधर बिखर कर दुर्बल हो जाती हैं तब दोनों भागों के मध्य असंतुलन उत्पन्न होकर सूर्य के अस्तित्व पर संकट आ सकता है।

आधिभौतिक भाष्य :–

1. (यस्य) जिस राजा का (कपृत्) सेनाबल अथवा उसका अन्नधन का भण्डार (सक्थ्या) (अन्तरा) सभी विद्वानों वा धन की कामना करने वाले प्रजाजनों के मध्य उभरते रागद्वेष रूप संघर्ष के मध्य (रम्बते) पिछड़ जाता है अथवा उनकी विशेष आसक्ति का कारण बन जाता है। (स न ईशे) वह ऐश्वर्यहीन राजा अपने देशवासियों पर शासन नहीं कर सकता है अर्थात् उसके राष्ट्र में अराजकता उत्पन्न हो जाती है परन्तु (निषेदुषः) निरन्तर स्थिरता में आश्रित जिस राजा का सेनाबल अथवा अन्नधन संसाधन (रोमशम्) जब प्रशस्त रूपेण सब प्रजाजनों के लिए अनुकूल वचनयुक्त एवं प्रचुर औषधि, पशु आदि से सम्पन्न होता है तथा (विजृम्भते) सब प्रजाजनों के लिए यथायोग्य रीति से वितरित किया जाता है तथा यह वितरण व्यवस्था सदा सुचारू रूपेण चलती रहती है, (स इत् ईशे) वही राजा अपने राष्ट्र पर सब ऐश्वर्यों से युक्त होकर शासन कर सकता है। (विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः) वह ऐसे समग्र ऐश्वर्य सम्पन्न राजा का शासन अन्य सभी व्यवस्थाओं से श्रेष्ठ होता है। (भाष्य ऋग्वेद १०.८६.१६)

भावार्थ :– राजा को चाहिए कि वह सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए अनुकूल वचनों से युक्त होकर अपनी प्रजा के मध्य पनप रहे रागद्वेषजन्य असन्तोष एवं संघर्ष को दूर करने का सतत प्रयत्न करे, साथ ही अपने बल व धन का सम्पूर्ण प्रजा के हित में यथायोग्य नियोजन करे।

2. (यस्य) (निषेदुषः) जिस विश्रान्त एवं कष्टग्रस्त राजा का (रोमशम्) प्रशस्त अन्न औषधि व पश्वादि संसाधन (विजृम्भते) अव्यवस्थितरूपेण खुला रहता है अर्थात् जिसके राज्य में अपव्ययता व वितरण की अव्यवस्था होती है। (न स ईशे) वह ऐश्वर्यहीन राजा अपने राष्ट्र पर शासन करने में समर्थ नहीं होता है। (स इत् ईशे) वही राजा ऐश्वर्यवान् होकर अपने राष्ट्र पर समुचित रीति से शासन कर सकता है (यस्य कपृत्) जिसका सेनाबल तथा अन्नधन भण्डार (सक्थ्या अन्तरा) सभी विद्वानों व प्रजाजनों के मध्य उत्पन्न रागद्वेषजन्य संघर्ष के मध्य (रम्बते) उस रागद्वेष की भावना को हराकर अर्थात् दूरकर प्रजाजनों को उससे ऊपर उठाता है। फिर वह राजा सभी प्रजाजनों में उस बल व धनादि पालन सामग्री का दृढ़ता से यथायोग्य वितरण करता हुआ अपने पालन कर्म से सभी प्रजाजनों के ह्रदय में बस जाता है। (विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः) ऐसा ऐश्वर्यवान् राजा अपने प्रजाजनों को अपने अन्नादि पदार्थों के द्वारा सर्व दुःखों से तारने वाला होता है। (भाष्य ऋग्वेद १०.८६.१७)

भावार्थ :– ऐश्वर्य के इच्छुक राजा को चाहिए कि वह अपने राष्ट्र को बाहरी आक्रमणादि कष्टों से सुरक्षित रखते हुए पूर्ण पुरुषार्थ के साथ अपने अन्न–धन आदि पालन सामग्री का अपव्यय वा अव्यवस्थित वितरण कदापि न होने दे बल्कि अपने प्रजाजनों के अन्दर पनप रहे रागद्वेषजन्य असन्तोष एवं संघर्ष को उचित पालनादि क्रियाओं व आवश्यक होने पर उचित दण्ड का आश्रय लेकर दूर करके सबका हित करने की सदैव चेष्टा करता रहे, जिससे वह सबका पितृवत् प्रिय बना रहे।

आध्यात्मिक भाष्य :–

1. (यस्य) जिस विद्वान् पुरुष का (कपृत्) मन एवं सुखकारी प्राणों का समूह (सक्थ्या अन्तरा) रागद्वेषादि द्वन्द्वों में आसक्ति एवं कोलाहल के मध्य (रम्बते) चिपकाया रहता है अर्थात् उन्हीं में रत रहता है, (न स ईशे) वह अपनी इन्द्रियों पर शासन नहीं कर सकता, बल्कि (यस्य निषेदुषः रोमशम्) दृढ़ व ब्रह्मवर्चस् से तेजस्वी होकर अपने अन्तः करण को प्रणव तथा गायत्र्यादि छन्दरूप वेद की पवित्र ऋचाओं में प्रशस्त रूप से रमण करते हुए (विजृम्भते) स्वयं को परमपिता सुखस्वरूप परमेश्वर के

आनन्द में विस्तृत कर देता है (स इत् ईशे) वही योगी पुरुष अपनी इन्द्रियों पर शासन कर पाता है। (विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः) ऐसा जितेन्द्रिय विद्वान् अन्य प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ होता है। (भाष्य ऋग्वेद १०.८६.१६)

भावार्थ :– विद्वान् पुरुष को चाहिए कि अपने को योगयुक्त करके परमपिता परमात्मा में रमण करने के लिए अपने अन्तःकरण को रागद्वेषादि द्वन्द्वों से हटाकर प्रणव तथा गायत्र्यादि ऋचाओं के विधिपूर्वक जप द्वारा परमेश्वर की उपासना करने हेतु अपनी इन्द्रियों पर जय प्राप्त करे।

2. (यस्य निषेदुषः रोमशम्) जिस निरन्तर विश्रान्त व खिन्न रहते हुए विद्वान् पुरुष का अन्तःकरण विभिन्न गायत्र्यादि ऋचाओं का जप करते समय अर्थात् उपासना का अभ्यास करते समय (विजृम्भते) इधर उधर फैलने लगता है अर्थात् अस्थिर होकर इधर उधर भागता है, (न स ईशे) वह विद्वान् अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता है, बल्कि (यस्य कपृत्) जिसका मन तथा सुखकारी प्राण समूह (सक्थ्या अन्तरा) विभिन्न द्वन्द्वों तथा सांसारिक व्यवहार के बीच (रम्बते) स्थिर होकर तपता हुआ एक स्थान पर दृढ़ रहता हुआ निरन्तर परमेश्वर के जप में संलग्न रहता है, (स इत् ईशे) वही विद्वान् योगी बनकर अपनी इन्द्रियों पर शासन करके समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त करता है। (विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः) ऐसा योगी स्वयं को सब दुःखों से तारकर अन्य प्राणियों को भी दुःखों से तारने वाला होता है।

(भाष्य ऋग्वेद १०.८६.१७)

भावार्थ :– मुमुक्षु विद्वान् पुरुष को चाहिए कि ईश्वरोपासना वा जप करते समय मन को एकाग्र करके निरन्तर परमेश्वर में मग्न रहे तथा ऐसा करते हुए अपने सम्पूर्ण द्वन्द्वों को जीतकर स्वयं मोक्ष को प्राप्त करके दूसरे प्राणियों को भी दुःखों से दूर करने का प्रयत्न करता रहे।

(५) ब्राह्मण ग्रन्थों में अद्‌भुत विज्ञान

लेखक— स्वामी वेदानन्द सरस्वती

अपनी बात को हम ऐतरेय ब्राह्मण के एक आख्यान से आरम्भ करते हैं। देवों और असुरों में युद्ध चल रहा था। असुरों को परास्त करने की कामना से देवों ने सोमयाग का समायोजन किया। सोम द्यौलोक से प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि (सोमो ह वै दिविश्रितः) सोम द्यौ लोक में ही रहता है। देवों ने द्यौलोक से सोम लाने के लिये छन्दों से कहा। पहले सभी छन्द चतुष्पदा थे। छन्दों में से जगती छन्द सर्वप्रथम द्यौलोक से सोम लाने के लिये पक्षी बन करके आकाश में उड़ा। किन्तु वह द्यौ लोक तक न पहुँच सका। थकान के कारण मध्य से वापिस लौट आया और अपने तीन पाद भी मार्ग में ही छोड़ आया। एक पद को लेकर अपना अस्तित्व बचाकर वापिस आया। फिर देवों में त्रिष्टुप् को भेजा। किन्तु त्रिष्टुप् भी द्यौलोक तक न पहुँच सका। वह भी थकान से मार्ग के मध्य से ही लौट आया और अपना एक पद भी मार्ग में ही छोड़ आया। अन्त में गायत्री छन्द ने उड़ान भरी। वह द्यौलोक तक पहुँच गया। वहाँ से वह सोम को ले आया। साथ में जगती के तीन तथा त्रिष्टुप के एक पद को भी मार्ग से उठा लाया। अब गायत्री के पास 4 अपने + 3 जगती के + 1 त्रिष्टुप् का मिला कर कुल 8 पद हो गये। इन 8 पदों को मिलाकर गायत्री ने अपने एक पाद में रखा। इस अष्टाक्षरी गायत्री से देवों ने सोमयाग का प्रातः सवन पूरा किया। माध्यन्दिन सवन के लिये त्र्याक्षरा त्रिष्टुप् छन्द आगे आया। किन्तु वह त्र्याक्षरा त्रिष्टुप् माध्यन्दिन के भार को न सम्भाल सकी, तो गायत्री ने कहा कि इस सवन में मेरा भाग निकालो तो मैं आपकी सहायता करूँ। त्रिष्टुप् ने कहा — एवमस्तु। अब गायत्री के 8 और त्रिष्टुप् के 3 अक्षर मिल कर 11 अक्षर हुवे। तब यह 11 अक्षरों का त्रिष्टुप् छन्द कहलाया। इसी से देवों ने माध्यन्दिन सवन पूरा किया। तदनन्तर सायँ सवन के लिये जगती छन्द आगे आया। लेकिन एकाक्षरा जगती उसे न सम्भाल सकी, तो गायत्री ने कहा कि इस सवन में मेरा भाग निकालो तो मैं आपकी मदद करूँ। जगती ने कहा एवमस्तु। तब गायत्री के 11 और जगती का एक अक्षर मिलकर 12 अक्षरों का जगती छन्द कहलाया। इस से सायँ सवन पूर्ण हुवा।

इस आख्यान के द्वारा छन्द विज्ञान प्रकट किया गया है। इसके अनुसार :—

1. सभी छन्द समान सामर्थ्य के नहीं होते।
2. एक छन्द दूसरे छन्द में परिवर्तित हो जाता है।
3. किसी अवरोधक से कुछ छन्द शक्तिहीन भी हो जाते हैं।
4. छन्दों की गतियों में भेद होता है।
5. दो छन्द मिलकर तीसरे नये छन्द को जन्म देते हैं।

इनके उदाहरण हमें लोक व्यवहार में देखने को मिलते हैं जैसे :— (1) इन्द्र धनुष में सात रंग होते हैं। इन सातों में लाल रंग की तरंग सदा सर्वदा बाहर की ओर ही होती है। क्योंकि लाल रंग की तरंग दैर्ध्य बड़ी होती है। (2) आकाश में बिजली चमकती है और बादल गरजते है। बिजली की चमक हमारी आँखों तक पहले पहुँचती है और गर्जना की आवाज बाद में सुनाई पड़ती है। क्योंकि प्रकाश की तरंग, ध्वनितरंग, से अधिक तीव्रगामी होती है। (3) अपने दूरभाष पर हम अमेरिका आदि दूर देशस्थ मित्रों से वार्तालाप करते हैं। हजारों मील की यात्रा करके ध्वनि तरंग क्षणों में कैसे पहुँच जाती है? ध्वनितरंग विद्युततरंग में बदलती है। पुनः विद्युततरंग ध्वनितरंग के रूप में बदल कर सुनाई देती है।

छन्द शब्द के विभिन्न अर्थः— 1. गोस्थान (सूर्य) 2. सूर्य रश्मि 3. सप्तधाम (सप्त छन्द अग्नि के धाम हैं) 4. छन्द अग्नि का प्रिय तनू है 5. वेद 6. छन्दशास्त्र 7. गायत्री आदि छन्द 8. संहिता 9. इच्छा 10. स्वच्छन्द = अनियंत्रित आचार

यज्ञ के तीनों सवनों में गायत्री छन्द का मुख्य भाग होने से उस छन्द का जीवन के लिए विशेष महत्व है। गायत्री छन्द के इस महत्व को दर्शाने के लिए छन्द शास्त्र में गायत्री के 34 प्रभेद दर्शाये हैं। इतने भेद अन्य किसी भी छन्द के नहीं है।

ये गायत्री आदि छन्द क्या हैं? इसका उत्तर हमें ऐतरेय ब्राह्मण देता है :—

प्रजापतेर्वा एतान्यङ्गानि यच्छन्दांसि।

अर्थात्— ये छन्द (प्रजापति) सूर्य के ही अङ्गभूत हैं।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ऊर्जा का ही खेल है। ऊर्जा द्रव्य के रूप में तथा द्रव्य ऊर्जा के रूप में बदलते रहते हैं। ऊर्जा तरंग के रूप में गति करती है। ये तरंग ही वैदिक भाषा में छन्द कहलाते हैं। आङ्गल भाषा में इन्हें rays कहा जाता है। छन्दों के अनेकानेक भेद हैं। सात मुख्य छन्दों को सूर्य के घोड़े कहा जाता है– हयाश्च सप्त छन्दांसि तेषां नामानि मे श्रृणु। गायत्री च बृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुबेव च। अनुष्टुप् पंक्तिरित्युक्ताश्छन्दांसि हरयोरवेः। (विष्णुपुराण दि. ७/८) अर्थात् – ये गायत्री, बृहती, उष्णिक् आदि छन्द सूर्य के घोड़ों के समान हैं। जहाँ ये किरणें पहुँचती हैं वहीं सूर्य के दर्शन होते हैं। जहाँ प्रकाश नहीं पहुचेगा वहाँ सूर्य के दर्शन नहीं हो सकते। इसलिये रश्मियों को घोड़ों की उपमा दी है। इन्हीं सात छन्दों को यजु. (१७/७६)में अग्नि की सात जिह्वा के रूप में वर्णन किया है।

(यजु. १४/१६) में पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ आदि को छन्द के रूप में ही बतलाया है। क्योंकि छन्द ही घनीभूत होकर द्रव्य का रूप ले लेते हैं। मन्त्र में देखें–

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो, वाक् छन्दोमनश्छन्दः

कृषिश्छन्दः हिरण्यं छन्दो गोश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः।।

विज्ञान के छात्रों को ध्वनितरंग, प्रकाशतरंग, विद्युत्तरंग, चुम्बकीय तरंग, आदि –2 अनेकों तरंगों का ज्ञान कराया जाता है। इन छन्दों की भिन्न–2 गतियाँ और भिन्न रंग होते हैं तथा उनके अपने–अपने देवता भी होते हैं। छन्दों के यदि अपने रंग न होते तो इन्द्र धनुष में सात रंग कदापि देखने में न आते। छन्दों के समुदाय प्रगाथ कहते हैं।

ध्वनि तरंग के विषय में ऋ.(१। १६४। २४) कहता है–

अक्षरेण मिमीते सदावाणी।

अर्थात्–वाणी द्वारा उच्चारित अक्षर से ही छन्दों का माप किया जाता है।

आचार्य दुर्ग लिखते हैं –नाच्छन्दसि वागुच्चरति। अर्थात्–बिना छन्द के कोई शब्द ही नहीं होता। दूरभाष में ये छन्द ही काम करते हैं। इसी बात को भरतमुनि दोहराते हैं :– छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्द वर्जितम्।

अर्थात्– एक भी वर्ण बिना छन्द के नहीं होता। अथवा यूँ कहें कि छन्द ध्वनियुक्त ही होता है। यहाँ यह अन्वेषटव्य हे कि क्या प्रकाशतरंग, विद्युत्तरंग, चुम्बुकीय तरंग आदि में भी कुछ ध्वनि होती है। जो छन्द सर्जन में सहायक होते हैं, उन्हें–दैवी छन्द कहते हैं।

जो ध्वंसात्मक होते हैं, उन्हे आसुरी छन्द कहते हैं। वेद में सूर्य को सहस्रांशु कहा गया है। उसका अर्थ है कि सूर्य से हजारों किस्म की रश्मियाँ निकलती हैं। हम अपनी आँखों से सूर्य की केवल सात तरगों को ही देख सकते हैं। शेष तरंगें हमारी आँखों की ग्रहण क्षमता के क्षेत्र में नहीं आती। सूक्ष्म तरगं दैर्ध्य की रश्मियों को अल्ट्रावोयलैट रेज तथा विस्तीर्ण तरंग दैर्ध्य की तरगों को इन्फ्रारैड रश्मियाँ कहते हैं। सूर्य की इन रश्मियों के कारण ही विभिन्न् ऋतुवें उत्पन्न होती हैं। गायत्री छन्द से वसन्त, त्रिष्टुप् से ग्रीष्म, जगती से वर्षा, अनुष्टुप् से शरद्, पंक्ति से हेमन्त और अति छन्दों से शिशिर ऋतु होती है।

रहस्य की बात यह है कि छन्द में जितने कम अक्षर होते हैं उतना ही वह तीव्र गति वाला होता हैं। एकाक्षर छन्द का उदाहरण ओम् है। इसे शास्त्रीय भाषा में कृति या मा कहते हैं। यह दैवी छन्दों का भेद हैं। यह सब से तीव्रतम गति का छन्द है। अक्षरों का छन्द की गति पर प्रभाव पड़ता है। ऋषि लोग इस विज्ञान को जानते थे इसीलिये वे अपने प्रतिपाद्य विषयों में सूत्रात्मक शैली का प्रयोग करते थे। मितभाषी व्यक्ति की वाणी अधिक प्रभावशाली होती है। इस कारण बुद्धिमान व्यक्ति कभी बहुभाषी नहीं होता। थोड़े शब्दों में ही वह अपने भाव कह देता है। छन्दों के रंगो के कारण हमारे भाव, विचार, मन, वाणी, भाषा, शरीर के अंग प्रत्यंग, नस–नाडियाँ, अणु–प्रमाणु, यह पूरा शरीर, हमारे कर्म, यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, उसका एक–एक पदार्थ चित्रित है। प्रत्येक अणु–प्रमाणु के रंग –2 में भेद है तो वह छन्द भेद के कारण है। एक 'ओम्' छन्द श्वेत है शेष सभी छन्द किसी न किसी रंग से रंजित है। ओम् के उपासक के शेष सब रंग धुल जाते हैं। सूर्य से ही दैवी छन्द भी उत्पन्न होते हैं और सूर्य से ही आसुरी छन्द भी उत्पन्न होते हैं। इसलिए आलंकारिक भाषा में कहा जाता है कि देव और असुर प्रजापति की सन्तान हैं। असुर ज्येष्ठ है और देव कनिष्ठ हैं। जगत् उत्पत्ति के समय असुर छन्द सक्रिय होते हैं। धीरे–2 उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है, तब दैवी छन्द क्रिया रूप में परिणत होते हैं। दैवी छन्द निर्माण करते हैं और आसुरी छन्द ध्वंस करते

हैं। इसी को देवासुर संग्राम कहा जाता है। दर्जी किसी कपड़े को पहनने योग्य बनाता है तो पहले कैंची का प्रयोग करता है, फिर सूईधागे का। कैंची आसुरी छन्द का काम करती है और सूई–धांगा दैवी छन्द का।

सूर्य की जो अल्ट्रावोयलेटरेज् होती है, उनमें एक्स–रेज, गामारेज, कोस्मिकरेज, सुपर कोस्मिकरेज, मेगा कोस्मिकरेज एवं उनसे भी सूक्ष्म तरंगों के भेद हैं। ये इतनी शक्तिशाली और तीव्रगामी होती है कि लोहे की मोटी–2 दीवारों को भी बिना रूकावट के पार कर जाती हैं। आसमान से यदि सीधी कोस्मिक रश्मियां मानव के शरीर पर पड़ जाये तो मानव का शरीर जल कर भस्म हो जावे। कुछ एक्स–रेज आदि का उपयोग डाक्टर लोग चिकित्सालयों में करते हैं। इन्फ्रारैड रश्मियों में माइक्रो वेव्ज तथा रेडियो वेव्ज को कम्प्यूटर तथा टेलिविजन में प्रयोग किया जाता है। रश्मियों के इस विज्ञान से हमारे ऋषि लोग परिचित थे। वे इनका आत्म कल्याण हेतु ही प्रयोग करते थे। आजकल जैसे विध्वसांत्मक कृत्यों में उनका प्रयोग वे पाप मानते थे।

छन्दसां देवता स्वर वर्ण ऋषि

छन्दः	गायत्री पृथिवीलोक	त्रिष्टुप् अन्तरिक्षलोक	जगती द्यौलोक	बृहती	पंक्ति	अनुष्टुप्	उष्णिक्
देवताः	अग्निः (प्रातः सवन)	इन्द्रः (माध्यन्दिन सवन)	विश्वेदेवाः (सूर्यरश्मियाँ) (सायं सवन)	बृहस्पतिः	वरुणः	सोमः	सविता
स्वरः	षड्जः	धैवत	निषादः	मध्यमः	पञ्चमः	गान्धारः	ऋषभः
वर्णः	शुक्लः	रक्तः	गौरः	कृष्णः	नीलः	पीतः	कपिशः
ऋषिः	आग्निवेश्यः	कौशिकः	वासिष्ठः	आङ्गिरसः	भार्गवः	गोतमः	काश्यपः

वेदों और ब्राह्मणों का यह सूक्ष्म विज्ञान हमारे जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी है। हमनें ऊपर बतलाया है कि जगती छन्द से वर्षा होती है। वर्षा से अन्न पैदा होते हैं।

ब्राह्मण का अद्‌भुत् जीवन चक्र देखिये :–

'' अद्‌भिः अन्नं अन्नेन प्राणं प्राणेन अग्निः, अग्निना वायु, वायुना आदित्यः, आदित्येन

चन्द्रमा, चन्द्रमसा नक्षत्राणि, नक्षत्रै विद्युत् विद्युतात् वृष्टिः „ '' (शत.१०.५.२.११)

यज्ञों में जगती छन्द के सस्वर पाठ से आदित्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रों में प्रतिक्रिया के फलस्वरूप विद्युत् उत्पन्न होकर वृष्टि का कारण बनती है। इस विज्ञान से सुपरिचित ऋषि लोग वर्षेष्टि याग करके वर्षा कर लेते थे।

ऐतरेय ब्राह्मण कहता है–विद्युत् हीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति । (२। ४१)

अर्थात्– विद्युत से ही वृष्टि और अन्नादि पैदा होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण की प्राचीनता :–श्री गुरूवर्य पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक लिखते है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐतरेय ब्राह्मण सबसे अधिक प्राचीन है। उसका प्रवचन आज से लगभग ६६०० वर्ष पूर्व का है। इसमें ४० अध्याय हैं। उसके प्रथम ३० अध्याय ऐतरेय महिदास प्रोक्त हैं। अन्तिम १० अध्याय शौनक प्रोक्त है। ब्राह्मण ग्रन्थों के काल विषय में हमारा विचार भिन्न है। यास्क लिखता है– साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृत्धर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान्सम्प्रादुः उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेम ग्रन्थं समाम्नात्तिषु वेदं च वेदांगानि च'

यह काल त्रेतायुग का है। जब ब्राह्मणों का प्रवचन हुवा।

मन्त्रान् = ब्राह्मण (निरूक्तलोचन) निरूक्त के आधार भी ब्राह्मण ग्रन्थ थे।

ऐतरेय ब्राह्मण के शुनः शेप आख्यान में त्रिकालातीत सत्य की शिक्षा :–

इन्द्र रोहित से कहता है :– नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुमः ।

पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा, चरैवेति।।१।।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः।

शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हतश्चरैवेति।।२।।
आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वास्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति ।।३।।
कलि शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापर ।
उत्तिष्ठन् त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरंश्चरैवेति ।।४।।
चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम् ।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति ।।५।।

अर्थात्– बिना परिश्रम के किसी भी व्यक्ति को जीवन में कभी यश श्री नहीं मिलती। समाज का श्रेष्ठतम व्यक्ति भी श्रम के त्याग से पाप का भागी हो जाता है।।१।।

परिश्रमी व्यक्ति अपने परिश्रम से सुन्दर सुडौल शरीर का निर्माण कर लेता है। सच्चे स्वास्थ्य का आनन्द परिश्रमी ही प्राप्त करते हैं। परिश्रमी व्यक्ति के पाप भी दूर भाग जाते हैं। वे थक कर सो जाते हैं।।२।।

बैठे रहने वाले व्यक्ति का भाग्य भी बैठ जाता है। खड़े होने वाले व्यक्ति का भाग्य भी खड़ा हो जाता है। सोने वाले का भाग्य पड़ कर सो जाता हैं। चलने वाले व्यक्ति का भाग्य भी चलने लगता है। अर्थात– व्यक्ति स्वयँ ही अपने भाग्य का विधाता है। वह जैसा चाहे वैसा ही उसका निर्माण कर सकता है ।।३।।

सोता हुवा व्यक्ति कलिकाल के समान है। चारपायी छोड़ कर उठ खड़ा होने वाला द्वापर हैं। उठकर चलता हुवा त्रेता है। उद्यम करने वाला सतयुग है ।।४।।

उद्यमी व्यक्ति का जीवन माधुर्य से भर जाता है। वह जीवन के उत्तमोत्तम फलों को प्राप्त कर लेता है। चलते हुवे सूर्य को देखो वह क्षणभर का भी प्रमाद नहीं करता। इसलिये सफलता के अभिलाषी व्यक्ति को कभी भी श्रम का त्याग नहीं करना चाहिये। सदा चलते रहो, आगे ही आगे बढ़ते रहो। वीर तुम बढ़े चलो, धीर तुम बढ़े चलो। रुको नहीं बढ़े चलो, थको नहीं बढ़े चलो। अटको नहीं बढ़े चलो, भटको नहीं बढ़े चलो। यही त्रिकालातीत शिक्षा है।।५।।

इस महान ग्रन्थ पर अनुसंधान करने वाले श्री आचार्य अग्निव्रत जी नैष्टिक हमारे श्रद्धा और सम्मान के पात्र है। इस पवित्र यज्ञ में उनका जीवन समर्पित है। हम सब को दिल खोलकर तन, मन, धन, से उन की इस कार्य में हर सम्भव सहायता करनी चाहिये। यह महान पुण्य का कार्य है।

।। इत्यो३म् शम् ।।

(६) विनम्र निवेदन

मान्यवर! आशा है कि आपने इस पुस्तिका को ध्यान से पढ़कर आचार्य जी के कार्य और महत्ता को भली प्रकार समझ लिया होगा, ऐसी आशा करते हैं। यदि आपके हृदय और मस्तिष्क वेद के इस अपूर्व कार्य के लिए उत्सुक हुए हों और हमें अपना सहयोग करना चाहें तो आप हमारे यज्ञ में निम्न प्रकार से सहयोगी बन सकते हैं–

1. प्रतिवर्ष न्यूनतम 12,000/– रूपये अथवा एक बार न्यूनतम एक लाख रूपये का दान करके सहयोगी संरक्षक बन सकते हैं। आपको न्यास की वार्षिक बैठक में जो प्रायः वार्षिकोत्सव के अवसर पर हुआ करेगी, में विशेष अतिथि रूपेण आमन्त्रित किया जाता रहेगा।
2. प्रतिवर्ष न्यूनतम 6,000/– रूपये अथवा एक साथ न्यूनतम 50,000/– रूपये देकर विशेष आमन्त्रित सदस्य बन सकते हैं। आपको भी वार्षिक बैठक के अवसर पर अतिथि रूपेण आमन्त्रित किया जाता रहेगा।
3. वार्षिक न्यूनतम 1,000/– रूपये अथवा एक सौ मासिक देते रहकर सहयोगी सदस्य बन सकते हैं।
4. अपने नाम से कमरा आदि बनवा सकते हैं।
5. अपने किसी परिजन की स्मृति में अथवा यों ही स्थिर निधि में धन जमा करा सकते हैं, जिसके ब्याज का उपयोग न्यास करता रहे। जब तक न्यास ब्याज का उपयोग करेगा तब तक यदि स्थिर निधि सहयोगी संरक्षक वा विशेष आमंत्रित के बराबर है, तो आपको भी उसी श्रेणी का सदस्य माना जायेगा।

   नोट– उपर्युक्त सभी सहयोगी महानुभावों को न्यास की C.A. द्वारा की हुई वार्षिक ऑडिट रिपोर्ट भेजी जाया करेगी। जो महानुभाव स्वयं दान नहीं कर सकें वे दूसरों को प्रेरित करके कम से कम 8 सदस्य आदि बनाकर स्वयं निःशुल्क उसी श्रेणी के सदस्य वा सहयोगी संरक्षक आदि बन सकते हैं।
6. वयोवृद्ध विद्वान्, संन्यासी, साधु, महान् वैज्ञानिक महानुभाव अपना आर्शीवाद तथा बौद्धिक सहयोग दे सकते हैं।
7. विद्यार्थी, किसान, श्रमिक, व्यापारी आदि अपनी पवित्र आहुति श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार सहयोग कर सकते हैं। आई. आई. टी., इंजीनियरिंग व विज्ञान के उच्च शिक्षा वा शोध स्तर के छात्र अपना बौद्धिक सहयोग भी दे सकते हैं।

यह कार्य अत्यन्त पवित्र है, इस कारण आचार्य श्री की भावनानुसार विनम्र निवेदन है कि **जिसकी आजीविका किसी भी प्रकार की हिंसा, चोरी, तस्करी, अश्लीलतावर्धक साधनों, नशीली वस्तुओं की विक्री, धोखाधड़ी, शोषण आदि पर निर्भर हो तथा जो निर्धन भाई अपनी सामर्थ्य से अधिक (अथवा अपने परिवार में क्लेश करके) दान देना चाहते हों, ऐसे महानुभावों की सद्भावना का धन्यवाद करते हुए भी हम उनका दान लेने में असमर्थ हैं। कृपया ऐसा करने का प्रस्ताव करके हमें लज्जित न करें। हाँ, जो बन्धु ऐसे कर्मों को त्यागकर हमसे जुड़ना चाहें, तो उनका हार्दिक स्वागत है।**

कृपया आप अपना चैक/ड्राफ्ट/धनादेश, **"प्रमुख, श्री वैदिक स्वस्ति पन्था न्यास" PAN No. AAATV7229A** के नाम (केवल खाते में देय) भेजने का कष्ट करें, साथ ही अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखकर अवश्य भेजने की कृपा करें। **पंजाब नैशनल बैंक, शाखा– भीनमाल, IFS Code : PUNB0447400, खाता सं.– 4474000100005849 अथवा स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर, शाखा– भीनमाल, खाता सं– 61001839825** में ऑन लाइन भी आप धन जमा करवा सकते हैं, परन्तु ऐसा करने वाले **महानुभाव अपना नाम व पता दूरभाष द्वारा तत्काल सूचित करने का कष्ट करें,** जिससे समय पर रसीद भेजी जा सके, अन्यथा हमें बहुत कठिनाई होती है।

नोट– न्यास को दिया हुआ दान आयकर अधिनियम की धारा 80–जी के अन्तर्गत कर मुक्त है।